* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

भगवान् परशुराम

भगवान् नृसिंहका प्राकट्य

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपाँ सो दयाल द्रवउ सकल कलि मल दहन॥

वर्ष ९६

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, मई २०२२ ई०

संख्या ५

पूर्ण संख्या ११४६

भगवान् नृसिंहकी स्तुति

तप्तस्वर्णसवर्णघूर्णदतिरूक्षाक्षं सटाकेसर-
प्रोत्कम्पप्रनिकुम्बिताम्बरमहो जीयात्तवेदं वपुः।
व्यात्तव्याप्तमहादरीसखमुखं खड्गोग्रवल्गन्महा-
जिह्वानिर्गमदृश्यमानसुमहादंष्ट्रायुगोड्डामरम् ॥

अहो! जिसके तपे हुए स्वर्णके समान पीले तथा अत्यन्त रूखे नेत्र चंचल हो रहे थे और सटाके बाल ऊपर उठे हुए हिल रहे थे, जिनसे गगनतल आच्छादित हो रहा था, जिसका मुख खुली हुई एक विस्तृत महती गुफा-सदृश था, जिसकी खड्गके समान तीखी महान् जिह्वा मुखके बाहर लपलपा रही थी और जो दृश्यमान दो महान् दाढ़ोंसे अत्यन्त भीषण लग रहा था, आपके उस दिव्य विग्रहकी जय हो।

[श्रीनारायणीयम्]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७९, श्रीकृष्ण-सं० ५२४८, मई २०२२ ई०, वर्ष ९६—अंक ५

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें शुल्क Air Mail — **वार्षिक** US$ 50 (₹ 3,000); **पंचवर्षीय** US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर निःशुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरिः ॥

हम सभीका अपना अनुभव है कि बचपनसे अभीतक हमने अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों—आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचासे भिन्न-भिन्न भोगोंका ग्रहण किया है। ये भोग हमने बार-बार किये हैं और हर बार उसी प्रकारकी उत्सुकतासे किये हैं और भोगके क्षणमें एक ही प्रकारकी सुखानुभूति हुई है, किंतु अगले ही क्षण वह सुख गायब हो जाता है। हम फिर उसी सुखकी तलाशमें निकल पड़ते हैं। यह प्रक्रिया हम हजारों बार दुहरा चुके हैं, फिर भी बार-बार उसीमें उलझे रहते हैं। शास्त्रोंने इसे 'चर्वित-चर्वण' कहा है—चबाये हुएको चबाते रहना (जुगाली करनेकी पशुप्रवृत्ति)। भगवत्कृपासे प्राप्त मनुष्य-देहमें अपनी बुद्धिका प्रयोगकर हम भोगोंकी इस मायामयी मृगमरीचिकासे बचें—इसीमें कल्याण है।

—सम्पादक

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—जबतक तुम शरीरको तथा नामको 'मैं' मानते हो, अपना 'स्वरूप' मानते हो, तबतक राग-द्वेषसे बच नहीं सकते और जबतक तुम्हारी पारमार्थिक दैवी सम्पत्तिको लूटनेवाले राग-द्वेष हैं, तबतक तुम विषय-कामनासे रहित नहीं हो सकते; और जबतक विषयासक्ति तथा विषयकामना है; तबतक पापाचरणसे, निषिद्ध कर्मसे, दूसरोंका अहित करनेवाली प्रवृत्तिसे बचे नहीं रह सकते और जबतक ऐसे दुष्कर्म होते रहेंगे, तबतक जीवनमें असली सुख-शान्तिके दर्शन नहीं हो सकते और जन्म-मृत्युके चक्रसे छुटकारा नहीं मिल सकता।

याद रखो—जन्म-मृत्युके चक्रसे छुटकारा पाना ही असली सुख-शान्तिको प्राप्त करना है। यही मानव-जीवनका एकमात्र ध्येय है। अतएव 'शरीर' और 'नाम' से मैंपनको दूर करो। विचारके द्वारा यह दूर हो सकता है। शरीर माताके गर्भमें बना है और एक दिन नष्ट हो जायगा तथा नाम जन्मके बाद रखा गया और बार-बार बदला गया; परंतु इस शरीरमें 'मैं' बोलनेवाले तथा 'नाम' को मैं बतानेवाले तुम इससे अलग सदा एक-से हो। मृत्यु होनेपर जब बोलनेवाला 'मैं' निकल जायगा, तब भी शरीर तो रहेगा। 'नाम' कुछ समय बादतक भी रहेगा। पर शरीर तथा नामको 'मैं' कहनेवाला नहीं रहेगा। अतएव यह सिद्ध है कि वही 'मैं' तुम हो, जो इस शरीर और नामसे पृथक् हो, वही तुम चेतन आत्मा हो, जो तीनों कालोंमें, चारों अवस्थाओंमें रहते हो। इस अपने स्वरूपको समझकर 'शरीर' तथा 'नाम' से 'मैं' को अलग कर दो। जहाँ 'मैं' अलग हुआ वहाँ 'शरीर' और 'नाम' से सम्बन्ध रखनेवाला 'मेरा' भी सबसे निकल जायगा। बस, फिर कहीं राग-द्वेष नहीं रह जायगा और राग-द्वेषके अभावमें उससे उत्पन्न होनेवाले दोषोंका अपने-आप ही अभाव हो जायगा।

याद रखो—एक अखण्ड नित्य सत्य आनन्दमय आत्मस्वरूपकी उपलब्धि होनेपर तुम जन्म-मृत्युके चक्रसे अवश्य छूट जाओगे; पर यदि यह तुम्हें कठिन जान पड़ता हो तो कोई आपत्ति नहीं। अपने 'मैं' को बनाये रखो, पर उसे श्रीभगवान्‌का बना दो। संसारमें तुम और किसीके भी न रहकर भगवान्‌के हो जाओ। तुम्हारी प्रत्येक क्रियासे, तुम्हारी प्रत्येक चेष्टासे, तुम्हारे प्रत्येक संकल्पसे, तुम्हारे प्रत्येक विचारसे सदा एक ही निश्चयात्मक ध्वनि निकले—मैं भगवान्‌का हूँ, मैं भगवान्‌का हूँ—इस प्रकार 'मैं' को भगवान्‌का बना दो और 'मेरा' भगवान्‌के श्रीचरणोंको बना लो। सारी 'ममता' सब जगहसे सिमटकर एकमात्र भगवान्‌के चरणारविन्दमें ही आकर केन्द्रित हो जाय। सदा यही निश्चय रहे कि एकमात्र भगवान्‌के श्रीचरणारविन्द ही मेरे हैं और कुछ भी मेरा नहीं है। यों अपनी 'अहंता-ममता' को बनाये रखो, पर उन्हें समर्पण कर दो केवल श्रीभगवान्‌के ही। तुम भगवान्‌के हो जाओ और श्रीभगवान्‌के चरण-कमल-युगल तुम्हारे हो जायँ। 'मैं' केवल भगवान्‌के अधिकारमें रहे और 'मेरा' माननेको केवल श्रीभगवान्‌के चरणारविन्दरूप अतुलनीय धन रहे।

याद रखो—यों कर पाओगे, तो तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा, तुम धन्य हो जाओगे। फिर 'जन्म-मृत्यु' यदि रहेंगे तो वे भगवान्‌की नित्य नूतन लीलामाधुरीका रसास्वादन करानेके पवित्र और नित्य वांछनीय साधन बनकर रहेंगे। वे भी धन्य हो जायँगे, शरीर भी धन्य हो जायगा और नाम भी धन्य हो जायगा। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

भगवान् परशुराम

अग्रतः सकलं शास्त्रं पृष्ठतः सशरं धनुः—यह भगवान्के परशुराम अवतारका स्वरूप है। शास्त्र और सदाचारके मूर्तिमान् संरक्षक-स्वरूपसे उनका स्मरण किया जाता है। प्राचीन कालकी बात है—पृथ्वीपर हैहयवंशी क्षत्रिय राजाओंका अत्याचार बढ़ गया था। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। गौ, ब्राह्मण और साधु असुरक्षित हो गये थे। ऐसे समयमें भगवान् स्वयं परशुरामके रूपमें जमदग्नि ऋषिकी पत्नी रेणुकाके गर्भसे अवतरित हुए।

उन दिनों हैहयवंशका राजा सहस्रबाहु अर्जुन था। वह बहुत ही अत्याचारी और क्रूर शासक था। एक बार वह जमदग्नि ऋषिके आश्रमपर आया। उसने आश्रमके पेड़-पौधोंको उजाड़ दिया। जाते समय ऋषिकी गाय भी लेकर चला गया। जब परशुरामजीको उसकी दुष्टताका समाचार मिला, तब उन्होंने सहस्रबाहु अर्जुनको मार डाला। सहस्रबाहुके मर जानेपर उसके दस हजार लड़के डरकर भाग गये।

सहस्रबाहु अर्जुनके जो लड़के परशुरामजीसे हारकर भाग गये थे, उन्हें अपने पिताके वधकी याद निरन्तर बनी रहती थी। कहीं एक क्षणके लिये भी उन्हें चैन नहीं मिलता था।

एक दिनकी बात है, परशुरामजी अपने भाइयोंके साथ आश्रमके बाहर गये हुए थे। अनुकूल अवसर पाकर सहस्रबाहुके लड़के वहाँ आ पहुँचे। उस समय महर्षि जमदग्निको अकेला पाकर उन पापियोंने उन्हें मार डाला। सती रेणुका सिर पीट-पीटकर जोर-जोरसे रोने लगीं।

परशुरामजीने दूरसे ही माताका करुण-क्रन्दन सुन लिया। वे बड़ी शीघ्रतासे आश्रमपर आये। वहाँ आकर देखा कि पिताजी मार डाले गये हैं। उस समय परशुरामजीको बहुत दुःख हुआ। वे क्रोध और शोकके वेगसे अत्यन्त मोहित हो गये। उन्होंने पिताका शरीर तो भाइयोंको सौंप दिया और स्वयं हाथमें फरसा उठाकर क्षत्रियोंका संहार कर डालनेका निश्चय किया।

भगवान् परशुरामने देखा कि वर्तमान क्षत्रिय अत्याचारी हो गये हैं। इसलिये उन्होंने अपने पिताके वधको निमित्त बनाकर इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया। भगवान्ने इस प्रकार भृगुकुलमें अवतार ग्रहण करके पृथ्वीका भार बने राजाओंका बहुत बार वध किया।

तत्पश्चात् भगवान् परशुरामने अपने पिताको जीवित कर दिया। जीवित होकर वे सप्तर्षियोंके मण्डलमें सातवें ऋषि हो गये। अन्तमें भगवान् यज्ञमें सारी पृथ्वी दानकर महेन्द्रपर्वतपर चले गये।

भगवान् परशुरामजी सप्त चिरंजीवियोंमेंसे एक हैं। महेन्द्रपर्वतपर उनका नित्य निवास है।

वैशाख शुक्ल तृतीया (अक्षय तृतीया)-को भगवान् परशुरामजीका प्राकट्य दिवस माना जाता है। इस वर्ष ३ मई २०२२ को अक्षय तृतीया (परशुराम-जयन्ती) है। इस दिन सायंकालमें परशुरामजीकी मूर्तिका षोडशोपचार-पूजनकर निम्न मन्त्रसे अर्घ्य दिया जाता है—

जमदग्निसुतो वीर क्षत्रियान्तकर प्रभो।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया परमेश्वर॥

धर्मो रक्षति रक्षितः

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

अर्जुन इन्द्रपुरीमें रहकर अस्त्रविद्या तथा गान्धर्वविद्या सीख रहे थे, एक दिन इन्द्रने रात्रिके समय इनकी सेवाके लिये वहाँकी सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीको इनके पास भेजा। उस दिन सभामें इन्द्रने अर्जुनको उर्वशीकी ओर निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए पाया था। उर्वशी अर्जुनके रूप और गुणोंपर पहलेसे ही मुग्ध थी। वह इन्द्रकी आज्ञासे खूब सज-धजकर अर्जुनके पास गयी। अर्जुन उर्वशीको रात्रिमें अकेले इस प्रकार निःसंकोचभावसे अपने पास आयी देख सहम गये। इन्होंने शीलवश अपने नेत्र बन्द कर लिये और उर्वशीको माताकी भाँति प्रणाम किया। उर्वशी यह देखकर दंग रह गयी। उसे अर्जुनसे इस प्रकारके व्यवहारकी आशा नहीं थी। उसने खुल्लमखुल्ला अर्जुनके प्रति कामभाव प्रकट किया। अब तो अर्जुन मारे संकोचके धरतीमें गड़-से गये। उन्होंने अपने हाथोंसे दोनों कान मूँद लिये और बोले—'माता! यह क्या कह रही हो? देवि! निस्सन्देह तुम मेरी गुरुपत्नीके समान हो। देवसभामें मैंने तुम्हें निर्निमेष नेत्रोंसे देखा अवश्य था, परंतु मेरे मनमें कोई बुरा भाव नहीं था। मैं यही सोच रहा था कि पुरुवंशकी ये ही माता हैं। इसीसे मैं आपको देख रहा था। देवि! मेरे सम्बन्धमें और कोई बात आपको सोचनी ही नहीं चाहिये। हे निष्पापा! तुम मेरे लिये बड़ोंकी बड़ी और मेरे पूर्वजोंकी जननी हो। जैसे कुन्ती, माद्री और इन्द्रपत्नी शची मेरी माताएँ हैं, वैसे ही तुम भी पुरुवंशकी जननी होनेके नाते मेरी पूजनीया माता हो। हे सुन्दर वर्णवाली देवि! मैं तुम्हारे चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ, तुम मेरे लिये माताके समान पूज्या हो, और मैं तुम्हारे द्वारा पुत्रवत् रक्षा करनेयोग्य हूँ।' अब तो उर्वशी क्रोधके मारे आगबबूला हो गयी। उसने अर्जुनको शाप दिया—'मैं इन्द्रकी आज्ञासे कामातुर होकर तुम्हारे पास आयी थी, परंतु तुमने मेरे प्रेमको ठुकरा दिया। इसलिये जाओ तुम्हें स्त्रियोंके बीचमें नचनियाँ होकर रहना पड़ेगा और लोग तुम्हें हिजड़ा कहकर पुकारेंगे।' अर्जुनने उर्वशीके शापको सहर्ष स्वीकार कर लिया, परंतु धर्मका त्याग नहीं किया। एकान्तमें स्वेच्छासे आयी हुई उर्वशी-जैसी अनुपम सुन्दरीका परित्याग करना अर्जुनका ही काम था। धन्य इन्द्रियजय! जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने अर्जुनको बुलाकर उनकी पीठ ठोकी और कहा—'बेटा! तुम्हारे-जैसा पुत्र पाकर तुम्हारी माता धन्य हुई। तुमने अपने धैर्यसे ऋषियोंको भी जीत लिया। अब तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो। उर्वशीने जो शाप दिया है, वह तुम्हारे लिये वरदानका काम करेगा। तेरहवें वर्षमें जब तुम अज्ञातवास करोगे, उस समय यह शाप तुम्हारे छिपनेमें सहायक होगा। इसके बाद तुम्हें पुरुषत्वकी प्राप्ति हो जायगी।' सच है—'**धर्मो रक्षति रक्षितः।**'

× × ×

विराट-नगरमें अज्ञातवासकी अवधि पूरी हो जानेपर जब पाण्डवोंने अपनेको राजा विराटके सामने प्रकट किया, उस समय राजा विराटने कृतज्ञतावश अपनी कन्या उत्तराकुमारीका अर्जुनसे विवाह करना चाहा। परंतु अर्जुनने उनके इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'राजन्! मैं बहुत कालतक आपके रनिवासमें रहा हूँ और आपकी कन्याको एकान्तमें तथा सबके सामने भी पुत्रीके रूपमें ही देखता आया हूँ। उसने भी मुझपर पिताकी भाँति ही विश्वास किया है। मैं उसके सामने नाचता था और संगीतका जानकार भी हूँ। इसलिये वह मुझसे प्रेम तो बहुत करती है, परंतु सदा मुझे गुरु ही मानती आयी है। वह वयस्का हो गयी है और उसके साथ एक वर्षतक मुझे रहना पड़ा है। अतः आपको या किसी औरको हम दोनोंके प्रति अनुचित सन्देह न हो, इसलिये उसे मैं अपनी पुत्रवधूके रूपमें ही वरण करता हूँ। ऐसा करनेसे ही हम दोनोंका चरित्र शुद्ध समझा जायगा।' अर्जुनके इस पवित्र भावकी सब लोगोंने प्रशंसा की और उत्तरा अभिमन्युको ब्याह दी गयी।

पहले अमृत-सा, पीछे जहर-सा

(श्रीमगनलाल हरिभाईजी देसाई)

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥

(गीता १८। ३७)

इस श्लोकका अर्थ समझनेके लिये जगत्‌में सुख क्या है, यह जानना चाहिये। सुख दो प्रकारका है। एक भोगसुख है यानी प्राणी-पदार्थके संसर्गसे मिलनेवाला सुख और दूसरा सुख है आत्मसुख। अर्थात् 'मैं आत्मा हूँ' इस भावनासे मिलनेवाला सुख।

भोगसुखमें भोक्ता अपनेको अपूर्ण मानता है और जिस वस्तु या प्राणीसे अपनेको सुख होता है, वह समझता है कि उसके बिना वह रंक है, उसके बिना वह दीन और दुखी है। वह उसके परतन्त्र है, उसके अधीन रहता है। भोगसुखकी इच्छा करनेवाला सदा पराधीन है। उसकी सुख-शान्ति या आनन्द दूसरेके हाथ है। उसको कभी स्वतन्त्रता नहीं मिलती। जिसका काम दूसरेके बिना नहीं चल सकता, वह पराधीन है। ***'पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।'*** मनुष्यको सुख और आनन्दकी पल-पलमें जरूरत है। प्राणी पानी, भोजन और कपड़ेके बिना कुछ समय गुजार सकता है और वह भी स्वसन्तोष और आनन्दसे। हवा बिना भी कुछ मिनट निभा लेता है, परंतु प्राणिमात्रका आनन्दके बिना, सुखेच्छाके बिना काम नहीं चलता।

प्राणिमात्र यह इच्छा करता है कि सुख और आनन्द मुझसे एक पलके लिये भी अलग न हों। सुख और आनन्द प्राणीका जीवन है। अपना सर्वस्व देकर भी प्राणी सुखकी इच्छा करता है। ऐसा सुख प्राणी-पदार्थसे मिलता है। इस विश्वासपर जिसको जीना हो, उसको प्राणी-पदार्थको अपने अधीन करने और अपने वशवर्ती बनानेके लिये श्रम और चिन्ता रहेगी ही। अतएव इस प्रकार सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त करनेमें उसका नाश ही होता है। ऐसा प्राणी-पदार्थ, जिससे सुख पानेकी जीव कल्पना करता है, वह देखा भी जा सकता है और भोगा भी जा सकता है। वैसे प्राणी-पदार्थकी प्राप्तिमें श्रम है। उसकी रक्षा करनेमें श्रम और दुःख है। परंतु उसको देखना, जानना, भोगना—इन्द्रियोंसे और मनसे होता है। इसलिये उनसे प्राप्त होनेवाला सुख इन्द्रियगम्य माना जाता है। यह प्राणी-पदार्थसे प्राप्त होनेवाला सुख भोगते समय अमृतके तुल्य लगता है। उसमें जीव लीन हो जाता है। इसके भोगकालमें जीवको विचित्र शान्ति और आनन्द प्रतीत होता है। परंतु उस भोगके अनुभवकालके पूर्व और पश्चात् तो श्रम, दुःख, चिन्ता और क्लेश ही रहते हैं। वह प्राणी-पदार्थ भोगके एक क्षणके लिये तो सुख देता है और भोगके पहलेके और पीछेके अनन्त क्षणोंके लिये, दीर्घकालके लिये अखण्ड दुःख देता है। इसलिये इन्द्रिय और मनके भोग पहले अमृत-जैसे और पीछे विष-जैसे हो जाते हैं। जैसे विष मिठाईमें मिले रहनेसे खानेमें मीठा लगता है और पचाने—हजम करनेमें दुष्कर तथा मृत्युदाता हो जाता है। उसी प्रकार इन्द्रियोंके भोग भोगकालमें अमृत-जैसे और परिणाममें विष-जैसे होते हैं। विष जीवनका नाश करता है। खूब विचार करने और अनुभव करनेसे जान पड़ता है कि प्रत्येक भोग जीवनका ही नाश करता है।

यह बात इस प्रकार समझमें नहीं आती। अन्तिम भोगका उदाहरण लीजिये। विषयभोग अति मात्रामें मिलनेपर उससे क्षय हो जाता है और रोगी मरता है। जो फल अति मात्रामें है, वह अल्पसे भी अल्प मात्रामें है। प्रत्येक विषयभोग शक्ति और प्राणका नाश करता है। यही बात दूसरे भोगोंकी भी है। भोगमात्र आयु और शक्तिका नाश करते हैं। यानी भोग विषवत् हैं। इसीसे भोग भोगकालमें अमृतवत् आनन्द देनेवाले जान पड़ते हैं और परिणाममें जीवन हरनेवाले विषरूप होते हैं। संसारमें जितने सब रोग हैं, संसारमें जितने सब दुःख, क्लेश, झगड़े हैं, उन सबके माँ-बाप ये भोग हैं। भोगोंका त्याग किये बिना अखण्ड सुख होता ही नहीं। भोगसुखके विषयमें अखा भगतने एक सरस दृष्टान्त दिया है—

अखा माया करे फजेत। खाताँ खाँड़ ने चाबताँ रेत॥

'अखा भगत कहते हैं कि माया फजीहत करती

है। भोगते समय तो चीनीके समान मीठी लगती है, परंतु चबाते समय अनुभव होता है कि मैं रेत चबा रहा हूँ।'

इससे विपरीत आत्मसुख है, जो पहले विषके सदृश लगता है; परंतु परिणाममें अमृतके समान जान पड़ता है।

आत्मसुख वह है कि जिसमें पहले लगता है कि इसमें क्या है। परंतु जैसे-जैसे उसका रस चखा जाता है, वैसे-वैसे आनन्द मिलता है। भोगसुख शुरूमें अमृतरूप और परिणाममें विषरूप कैसे है? इसको अखा भगतने उपर्युक्त दोहेमें समझा दिया है।

अब आत्मसुख शुरूमें विषवत् और परिणाममें अमृत किस प्रकार होता है, यह बात इस लौकिक दृष्टान्तसे समझमें आ सकती है। कन्या माँ-बापके घरसे जब पहले-पहल अपने पतिके घर जाती है, तब पतिके घरका सुख उसे पहले विषवत् लगता है, पर जैसे-जैसे वह वहाँ रहने लगती है, वैसे-वैसे ही पतिसुख छोड़नेका मन नहीं होता। पतिगृहमें अधिक समयतक रहनेपर पिताके घरका सुख विष-जैसा और पतिके घरका सुख उसको अमृत-जैसा लगता है।

चित्तका आत्मा पति है और विषय नैहर है। मैं आत्मा हूँ, यह भावना जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ही चित्त आनन्दकी लहरोंमें स्नान करता है। यह आनन्द एक अद्भुत आनन्द है। हठयोगकी समाधिका आनन्द तो कुछ भी नहीं है। जीते-जागते, जिसको दृढ़तापूर्वक यह ज्ञान और अनुभव होता है कि मैं नित्य आत्मस्वरूप असंग चेतन हूँ, उसको जो अपार आनन्द होता है, उस आनन्दको वही जानता है।

जब आत्मबुद्धि होती है, तब वह स्वतन्त्र होता है। वह ब्रह्माण्डके किसी भी प्राणी-पदार्थके परतन्त्र, दीन, अधीन नहीं होता। स्वयं सुखस्वरूप है। इसलिये वह किसीसे सुखकी इच्छा नहीं करता।

गरीब, धनवान्, महाराजा, राजा, सम्राट्, देव, इन्द्र आदि चाहे जितने ऐश्वर्यसम्पन्न हों, यदि वे रात-दिन प्राणी-पदार्थोंसे सुखकी इच्छा करते हैं, तो उनके हृदयमें सदा अशान्ति और संताप होता है। ब्रह्माण्डमें कोई प्राणी-पदार्थ ऐसे नहीं हैं कि जिनके मिल जानेपर दूसरी किसी वस्तुका मिलना बाकी न रह जाता हो और जबतक किसी वस्तुका प्राप्त करना बाकी रहता है, तबतक अशान्ति और असुख ही रहता है। जिसको कुछ प्राप्त करना नहीं है, वह सदा आनन्दमें रहता है। शरीरबुद्धि या जीवबुद्धिमें प्राप्त करना रहता है। आत्मबुद्धिमें कुछ भी प्राप्त करना नहीं रहता, क्योंकि वह पूर्ण है और उससे अन्य कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो उसे सुख प्रदान करे। आत्मा अविनाशी है, अविकारी है और इस कारण जगत्के असंख्य विनाशी और विकारी पदार्थोंसे असंख्य गुना अमूल्य और सर्वथा विलक्षण है। पत्थरकी स्त्रीकी पुतलीकी अपेक्षा जैसे सच्ची स्त्री असंख्य गुना मूल्यकी और सर्वथा विलक्षण होती है, उसी प्रकार सारे विनाशी ब्रह्माण्डकी अपेक्षा हमारा अविनाशी आत्मा अनन्त मूल्यवान् और विलक्षण है। जैसे पिप्पलीको जितना ही घोंटा जाता है, वह उतना ही गुणप्रद होती है, इसी प्रकार मैं आत्मा, असंग, चेतन हूँ—यह जैसे-जैसे निश्चय होता जाता है, वैसे-वैसे ही आनन्दका अनुभव होता जाता है। हरिः ॐ तत्सत्

धन्य कौन?

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि। भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य। अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥

[काकभुशुण्डिजी गरुड़जीसे कहते हैं—] **हे सर्पोंके शत्रु गरुड़जी! मैं सेवक हूँ और भगवान् मेरे सेव्य (स्वामी) हैं, इस भावके बिना संसाररूप समुद्रसे तरना नहीं हो सकता। ऐसा सिद्धान्त विचारकर श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका भजन कीजिये। जो चेतनको जड़ कर देता है और जड़को चेतन कर देता है, ऐसे समर्थ श्रीरघुनाथजीको जो जीव भजते हैं, वे धन्य हैं।** [श्रीरामचरितमानस]

तीन प्रकारके यात्री

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

संसारमें असंख्य जीव हैं, जिनमें अधिकांश तो ऐसे हैं, जो अपने कर्मोंका फल भोगनेमात्रके लिये नाना प्रकारकी पशु-पक्षी-तिर्यक् आदि योनियोंमें पड़े हुए हैं। कुछ ऐसे हैं, जो भगवत्कृपासे पुण्यबलके कारण देव-दुर्लभ मनुष्य-शरीरको प्राप्त हुए हैं। इन मनुष्योंमें भी अधिक संख्या उन लोगोंकी है, जो इस मिथ्या, दुःखदायी, अनित्य, अपवित्र संसारको अविद्यासे सत्य, सुखरूप, नित्य पवित्र मानकर परम पुरुषार्थ भगवत्प्राप्तिके साधनोंसे सर्वथा विमुख हो केवल भोगविषयोंके संग्रहमें ही अपने अमूल्य जीवनका व्यय करते हुए निरन्तर भवसागरमें ही गोते खाते रहते हैं।

कुछ लोग ऐसे हैं, जो स्वर्गादि लोकोंके भोगोंको ही मोक्ष मानकर दिन-रात शास्त्रीय सकाम कामोंमें ही लगे रहते हैं, यदि उनके कर्म सर्वांगपूर्ण होते हैं तो किसी तरहसे डूबते-तैरते हुए भवसागरमें पड़ी हुई कर्मोंके फलरूपी वायुकी सहायतासे चलनेवाली नावको पकड़ लेते हैं और उसकी सहायतासे अपनी-अपनी भावनाके अनुसार देवताओंके लोक स्वर्गादिको प्राप्त होते हैं। यही दशा सकाम भावसे भिन्न-भिन्न प्रकारके देवोपासकोंकी होती है। वे लोग स्वर्गादि लोकोंमें जाकर अपने पुण्योंके अनुसार निश्चित समयतक वहाँके भोगोंको भोगते हैं; परंतु पुण्यका क्षय होते ही वे जबरदस्ती पुनः उसी मृत्युलोककी विविध योनियोंमें ढकेल दिये जाते हैं।

(गीता ७। २०—२३; ८। १६; ९। २०-२१)

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो सत्संगके प्रभाव और साक्षात् नारायणस्वरूप सद्गुरुकी कृपासे इहलोक, परलोकके भोगोंकी इच्छाको काकविष्ठावत् त्यागकर केवल परमात्मप्राप्तिकी शुभेच्छाको धारणकर, साधनचतुष्टयसे सम्पन्न हो, भवसागरसे निकलकर विचार अर्थात् शुद्ध निर्मल विवेक-सागरमें जाकर अपने साधनकी दृढ़ता और एकलक्ष्यताके कारण अति शीघ्र भगवान्के परमपदको पहुँचा देनेवाले अत्यन्त वेगवान् विशुद्ध ज्ञान या पराभक्तिके अभेद्य और अच्छेद्य जहाजपर चढ़ जाते हैं और वे शीघ्र ही परमात्माके उस परमपदको प्राप्त होते हैं कि जहाँ एक बार पहुँच जानेपर फिर दुःखपूर्ण भवसागरमें कभी लौटकर नहीं आना पड़ता।
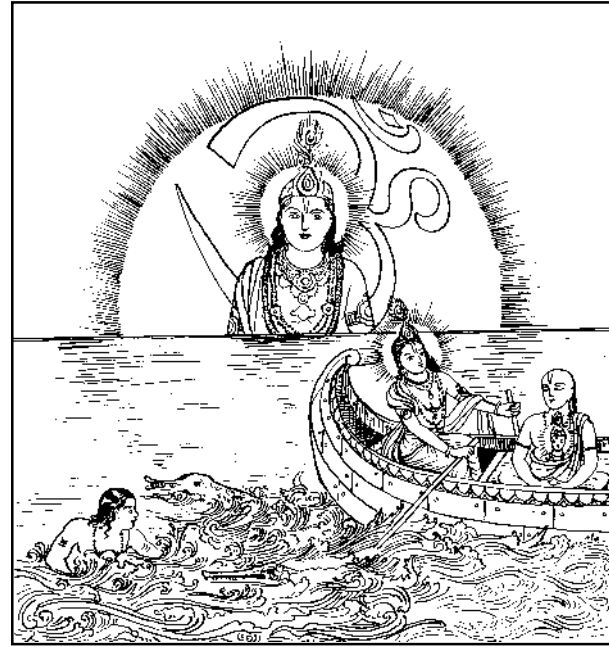
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

× × ×

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस जहाजमें बैठकर जानेवाले परम भाग्यवान् सत्पुरुष बहुत थोड़े ही होते हैं।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

परंतु स्मरण रखना चाहिये कि यदि किसीको दुःखोंसे सदाके लिये सर्वथा छूटकर परमात्मस्वरूपमें मिलनेकी इच्छा हो तो उसके लिये एकमात्र यही उपाय है कि वह परमात्मरूप सद्गुरुकी शरण होकर विचार (विवेक)-के द्वारा विशुद्ध ज्ञानके जहाजपर सवार होनेका प्रयत्न करे। इसके सिवा—'**नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।**'

हमारे आन्तरिक शत्रु—

जब अपवित्र विचार घेरते हैं!

[काम, कारण और निवारण]

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

जो मोहि राम लागते मीठे।

तौ नवरस षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे॥

तुलसी बाबाके इस पदमें जो अन्तर्वेदना छिपी है, उसका अनुभव किस साधकको नहीं होता?

हमें खट्टे, मीठे, चटपटे तरह-तरहके रसीले व्यंजन भाते हैं; शृंगार, हास्य, वीर, करुण आदि नव रसोंमें मजा आता है, जगत‍्के प्राणी-पदार्थ प्रिय लगते हैं। पर, राम अच्छे नहीं लगते! भगवान् मीठे नहीं लगते!

प्रभु-चरणारविन्दोंमें हमारा प्रेम हो, ब्रह्मकी ओर—सत्यकी ओर हमारा झुकाव हो, तो फिर विषयोंका प्रेम टिके ही कहाँ?

परंतु, कहाँ हो पाता है ऐसा?

× × ×

कोई उच्च आदर्श हो, कोई ऊँचा लक्ष्य हो, उसपर चलनेके लिये हम कृतसंकल्प हों, तो गन्दे और अपवित्र विचारोंकी जड़ ही कट जाय।

विषयोंमें हमें तभीतक आनन्द आता है, भोगोंमें तभीतक मजा आता है, विषयवासनामें तभीतक रस आता है, जबतक इससे ऊँचा रस हमने नहीं चखा। इससे ऊँचा कोई आदर्श हमारा आदर्श नहीं बना।

विनोबाने ब्रह्मचर्यकी व्याख्या करते हुए ठीक ही कहा है—'ब्रह्म' अर्थात् कोई बृहत् कल्पना। यदि मैं चाहता हूँ कि इस छोटी-सी देहके सहारे संसारकी सेवा करूँ, इसीके लिये अपनी सारी शक्ति खर्च करूँ, तो यह एक विशाल कल्पना हुई। विशाल कल्पना रखते हुए ब्रह्मचर्यका पालन हो जाता है।

इन्द्रियोंका निग्रह करना, यही एक विचार हमारे सामने हो तो हम गिनती करने लग जायँगे कि इतने दिन हुए और अभीतक कुछ फल नहीं दिखायी देता। लेकिन, किसी बृहत् कल्पनाके लिये हम इन्द्रियनिग्रह करते हैं तो 'यह हम करते हैं', ऐसा कर्तरि प्रयोग नहीं रहता; 'निग्रह किया जाता है' ऐसा कर्मणि प्रयोग हो जाता है या यों कहिये कि निग्रह ही हमें करना है।

'भीष्मपितामहके मनमें एक कल्पना आ गयी कि पिताके सन्तोषके लिये मुझे संयम करना है। बस, पिताका सन्तोष ही उनका 'ब्रह्म' हो गया और उससे वे आदर्श ब्रह्मचारी बन गये।'

'ऐसे ब्रह्मचारी पाश्चात्त्य देशोंमें भी हुए हैं। एक वैज्ञानिक रात-दिन प्रयोगमें मग्न रहता था। उसकी एक बहिन थी। भाई प्रयोगमें लगा रहता है और उसकी सेवा करनेके लिये कोई नहीं है—यह देखकर बहिन ब्रह्मचारिणी रहकर भाईके पास ही रही और उसकी सेवा करती रही। उस बहिनके लिये 'बन्धुसेवा' ब्रह्मकी सेवा हो गयी।'

'अध्ययन करनेमें यदि हम मग्न हो जायँ तो इस दशामें विषयवासना कहाँसे रहेगी? मेरी माता काम करते-करते भजन गाया करती थीं। भोजनमें नमक कभी-कभी भूलसे दुबारा पड़ जाता था, पर मन चिन्तनमें इतना निमग्न रहता था कि मुझे इसका पता ही नहीं चलता था।'

'वेदाध्ययन करते समय मैंने अनुभव किया कि देह मानो है ही नहीं। कोई लाश पड़ी है—ऐसी भावना उस समय हो जाती थी। इसलिये ऋषियोंने कहा है—बचपनसे वेदाध्ययन करो। मैंने अध्ययनके लिये ब्रह्मचर्य रखा। उसके बाद देशकी सेवा करता रहा। यहाँ भी इन्द्रिय-निग्रहकी आवश्यकता थी, किंतु बचपनमें इन्द्रियनिग्रहका अभ्यास हो गया था, इसलिये बादमें मुझे वह कठिन नहीं लगा।'

'मैं नहीं कहता कि ब्रह्मचर्य आसान चीज है। हाँ, विशाल कल्पना मनमें रखोगे, तो आसान है। ऊँचा आदर्श सामने रखना और उसके लिये संयमी जीवनका आचरण, इसे ही मैं 'ब्रह्मचर्य' कहता हूँ।'

× × ×

और विनोबाने इस ब्रह्मचर्यके लिये अपनेको किस तरह कसौटीपर कसा है, इसका अनुमान उस पत्रसे लग

सकता है, जो उन्होंने १०।२।१९१८ ई० को बापूके नाम लिखा था।

विनोबाने लिखा—'जब मैं दस वर्षका था, तभी मैंने ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए देशसेवा करनेका व्रत लिया था। उपनिषदोंका अध्ययन करनेके लोभसे मैं इतने दिनों आश्रमसे बाहर रहा। उपनिषद्, गीता, ब्रह्मसूत्र और शांकरभाष्य, मनुस्मृति, पातंजलयोगदर्शन—इन ग्रन्थोंका मैंने अभ्यास किया। इनके अलावा न्यायसूत्र, वैशेषिकसूत्र, याज्ञवल्क्यस्मृति—इन ग्रन्थोंको पढ़ गया। अब मुझको अधिक सीखनेका मोह नहीं है।'

'दूसरा काम था स्वास्थ्यसुधार। उसके लिये पहले तो मैंने १०-१२ मील घूमना शुरू किया। बादमें ६ से ८ सेर अनाज पीसना चालू किया। आज ३०० सूर्य-नमस्कार और घूमना—यह मेरा व्यायाम है। इससे मेरा स्वास्थ्य ठीक हो गया।'

'आहार—पहले ६ महीनेतक तो नमक खाया, बादमें उसे छोड़ दिया। मसाले वगैरा बिलकुल नहीं खाये और आजन्म नमक एवं मसाले न खानेका व्रत लिया। दूध शुरू किया। उसे भी छोड़ा जा सकता हो तो छोड़ देनेकी मेरी इच्छा है। एक महीना केवल दूध और नीबूपर बिताया। इससे ताकत कम हुई। आज मेरी खुराक है—दूध डेढ़ सेर, भाखरी दो, केले ४-५, नीबू १ (मिल जाय तो)। स्वादके लिये अन्य कोई पदार्थ खानेकी इच्छा ही नहीं होती। फिर भी मेरा यह आहार बहुत अमीरी है, ऐसा महसूस करता हूँ।'

'अपरिग्रह—लकड़ीकी थाली, कटोरी, आश्रमका एक लोटा, धोती, कम्बल और पुस्तकें—इतना ही परिग्रह रखा है। बंडी, कोट, टोपी वगैरह न पहननेका व्रत लिया है। इस कारण शरीरपर भी धोती ही ओढ़ लेता हूँ। करघेपर बुना कपड़ा ही इस्तेमाल करता हूँ।'

'स्वदेशी-परदेशीका सम्बन्ध मेरे पास है ही नहीं।'

'सत्य-अहिंसा-ब्रह्मचर्य—इन व्रतोंका परिपालन अपनी जानकारीमें मैंने ठीक-ठीक किया है, ऐसा मेरा विश्वास है।…'

× × ×

इस पत्रको पढ़कर बापूके मुँहसे यकायक निकल पड़ा—'गोरखने मछन्दरको हराया। भीम है भीम!'

कौन न गद्गद हो उठेगा इस उज्ज्वल प्रसंगको पढ़कर?

स्पष्ट है कि हमारी कल्पना ऊँची हो, विशाल हो, ब्रह्मकी खोजके लिये, अध्ययनके लिये, देश या समाजकी सेवाके लिये अथवा ऐसे ही किसी उच्च आदर्शकी प्राप्तिके लिये हम अपनेको उत्सर्ग कर दें, अपना जीवन दान कर दें, फिर तो स्वतः ब्रह्मचर्यका पालन हो जाता है। इन्द्रियाँ खुद ही संयमकी पटरीपर दौड़ने लगती हैं।

बच्चे कबड्डी खेलते हैं, हाकी-फुटबाल खेलते हैं—खेलनेके लिये, खेलका आनन्द लेनेके लिये। स्वास्थ्य उन्हें मिल जाता है घलुएमें। उसी तरह हमारा आदर्श ऊँचा हो, हमारा लक्ष्य ऊँचा हो, फिर तो इन्द्रियसंयम स्वतः हो जाता है।

× × ×

हर चीजके दो पहलू होते हैं।

एक भावात्मक, दूसरा अभावात्मक।

'सत्य बोलो' भावात्मक रूप है। 'झूठ मत बोलो' अभावात्मक।

'सभी इन्द्रियोंकी शक्तिका उपयोग आत्माके विकासके लिये करो'—यह हुआ ब्रह्मचर्यका भावात्मक रूप।

'विषयवासना मत रखो, इन्द्रियोंको इधर-उधर मत भटकने दो'—यह हुआ ब्रह्मचर्यका अभावात्मक रूप।

× × ×

आत्मानन्द, आत्माका विकास, ब्रह्ममें तल्लीनता, राममें रमना—ब्रह्मचर्यका एक रूप है।

इन्द्रियोंका निग्रह, इन्द्रियोंका संयम, विषय-वासनाका निर्मूलन—उसका दूसरा रूप है।

एक ही सिक्केके दो बाजू। एक ही तराजूके दो पलड़े।

ब्रह्मचर्यके परिपालनके लिये हमें दोनोंकी साधना करनी पड़ेगी।

कारण,

'रस्ते जुदे-जुदे हैं, मकसूद एक है।'

× × ×

कुछ लोग कहते हैं कि 'काम' न हो तो सृष्टिका क्रम ही बन्द हो जाय।

ठीक है।

परंतु सृष्टिका क्रम बनाये रखनेके लिये आप इतने चिन्तित क्यों हैं?

सृष्टिका नियन्ता करेगा न उसकी परवा।

उसने कहा ही है—

'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ॥'

× × ×

हमारे यहाँ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—धर्मके चार स्तम्भ माने गये हैं। गृहस्थ-आश्रमकी रचना शनैः-शनैः इस कामको मर्यादित करनेके लिये ही तो हुई है।

पति-पत्नी अपने अभावोंकी पूर्ति करते हुए जीवनके चरम लक्ष्यकी ओर अग्रसर हों, इसीलिये विवाहकी पद्धति चलायी गयी है।

विवाह करनेका अर्थ यह नहीं है कि हमें अमर्यादित कामोपभोगका 'लाइसेन्स' मिल गया।

× × ×

पति-पत्नी ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भी सन्तानोत्पत्ति कर सकते हैं। शास्त्रोंमें ऐसी व्यवस्था है। गर्भाधानके लिये हमारे यहाँ अनेक विधि-निषेध हैं।

कहा गया है कि प्रतिपदा, अष्टमी, एकादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या आदि तिथियोंको छोड़कर; व्यतिपात, ग्रहण, रामनवमी, शिवरात्रि, जन्माष्टमी, श्राद्ध-दिवस, संक्रान्ति और रविवारको छोड़कर; आश्लेषा, मघा, मूल, कृत्तिका, ज्येष्ठा, रेवती, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रोंको छोड़कर और पत्नीके ऋतुमती होनेकी प्रथम चार रात्रियोंको छोड़कर पाँचवींसे सोलहवीं रात्रितक गर्भाधानका उत्तम काल है।

इसके अलावा स्थान आदिके सम्बन्धमें भी कुछ विधि-निषेध हैं। जैसे रास्तेमें, अन्य लोगोंके सामने, औषधालयमें, मन्दिरमें, गुरुगृहमें, मित्रके और गुरुजनोंके बिछौनेपर, श्मशानमें, अपवित्र स्थानमें, सबेरे या शाम, औषध-पानके उपरान्त, भूखे पेट अथवा भोजनके तुरन्त बाद, मल-मूत्रके आवेगके समय, व्यायाम अथवा मेहनत करनेके बाद, उपवासके दिन, क्रोधके अथवा दुःखके आवेशमें, किसी अन्य आवेगके समय सहवास वर्जित है।

गर्भाधानके उपरान्त सन्तानके जन्म तथा उसके बाद उस समयतक सहवास वर्जित है, जबतक शिशु माताका दुग्ध-पान बन्द न कर दे।

× × ×

आप कहेंगे कि जब सब निषेध-ही-निषेध है, तब गर्भाधानके लिये भी अवसर कहाँ रह जाता है?

जी नहीं। फिर भी महीनेमें एकाध रात्रि निकल ही आयेगी।

आपका प्रश्न हो सकता है कि इतनेसे यदि वासनाकी तुष्टि न हो तब?

तो सुकरातके कथनानुसार कफन मँगवाकर घरमें रख लीजिये और चाहे जितनी बार वासनाके हाथका खिलौना बन जाइये।

× × ×

सुकरातसे किसीने पूछा—जीवनमें कितनी बार स्त्रीप्रसंग करना चाहिये?

'केवल एक बार।'

'एक बारसे तृप्ति न हो तब?'

'तब सालमें एक बार।'

'फिर भी मन न माने तो?'

'महीनेमें एक बार।'

'फिर भी चित्त चंचल हो तो?'

'तो माहमें दो बार। पर, ऐसा करनेसे मृत्यु शीघ्र आकर उठा ले जायगी।'

'माहमें दो बारसे भी यदि तृप्ति न हो तो?'

तब सुकरातने झल्लाकर कहा—'तब कफन मँगवाकर घरमें रख ले और चाहे जितनी बार वासनापूर्ति किया करे!'

× × ×

ऐसा नहीं कि ये सब कोरे आदर्शकी बातें हैं और व्यावहारिक जीवनमें असम्भव हैं।

जी नहीं। ऐसे पुरुष हुए हैं, आज भी हैं और आगे भी हो सकते हैं।

× × ×

श्रीश्रीरामकृष्णदेव परमहंस अपनी पत्नी शारदामणिके साथ एक शय्यापर सोते थे, पर विकारग्रस्त नहीं होते थे।

महात्मा गाँधीने ४० वर्ष पत्नीके साथ रहते हुए ब्रह्मचर्यका पालन किया।

× × ×

स्पष्ट है कि गृहस्थ-आश्रममें भी ब्रह्मचर्यका पालन किया जा सकता है, कामको पछाड़ा जा सकता है, उसपर बंदिश लगायी जा सकती है—बशर्ते कि कोई ऐसा चाहे।

हम पग-पगपर इसीलिये गिरते हैं कि हम सोच बैठते हैं कि कामपर विजय पाना असम्भव है। शैतान जैसे ही हमें फुसलाता है, हम बहक जाते हैं और अपवित्र विचारोंकी धारामें बह जाते हैं!

× × ×

बापूने इसके लिये बड़ी ही हितकर सलाह दी है—

'विवाहितोंको एक-दूसरेके साथ एकान्तसेवन नहीं करना चाहिये। एक कोठरीमें एक चारपाईपर नहीं सोना चाहिये। यदि परस्पर देखनेसे विकार पैदा होता हो तो अलग-अलग रहना चाहिये। यदि साथ-साथ बातें करनेसे विकार पैदा हो आता हो, तो बातें नहीं करनी चाहिये।'

'स्त्रीमात्रको देखकर जिसके मनमें विकार हो आता हो, वह अपनी स्त्रीके साथ मर्यादापूर्वक व्यवहार करे। जो विवाहित न हो, उसे विवाहका विचार करना चाहिये। किसीको सामर्थ्यके बाहर जानेका आग्रह नहीं रखना चाहिये।'

× × ×

और जब पत्नीके साथ इतने मर्यादित सम्भोगकी बात है, फिर बाहरकी तो कोई बात सोची ही कैसे जा सकती है? फिर अनैतिक, अवैध, अप्राकृतिक वासनातृप्तिकी कल्पना भी कैसे की जा सकती है?

परंतु एकपत्नीव्रतका पालन भी दाल-भातका कौर तो नहीं है।

× × ×

पत्नी भी मानवी है। उसमें भी मानवीय दुर्बलताएँ, कमियाँ और कमजोरियाँ रहती हैं। रुचिवैचित्र्य होता है। वह हमारी कल्पनाओंकी साकार प्रतिमा नहीं बन पाती।

और तब हम घरके दायरेके बाहर सुख खोजनेके चक्करमें पड़ जाते हैं।

आजका दूषित वातावरण, हमारा रहन-सहन, हमारी मित्रमण्डली, हमारे मनोविनोदके साधन—हमें पतनकी ओर बुरी तरह खींचते हैं।

और हम सहज ही गिर जाते हैं। पापके पथपर सहज ही हमारे पैर फिसल जाते हैं।

× × ×

यह मार्ग भयंकर है।

यह रास्ता खतरनाक है।

हमें इस ओर जानेकी कल्पना भी नहीं करनी चाहिये।

पर, जो चाहिये सो सब हो कहाँ पाता है?

सेठ जमनालाल बजाजने एक बार मनकी यह दुर्बलता बापूके चरणोंमें निवेदित की। उनका उत्तर हम सबके लिये उत्तम पथप्रदर्शक सिद्ध होगा। (उत्तर गुजरातीमें था, यह उसका भाषान्तर है—)

'अपवित्र विचारोंसे जो मुक्त हो जाय, उसे मोक्ष मिला ही समझना चाहिये।'

'अपवित्र विचारोंका नाश कठोर तपश्चर्यासे ही होता है। उसका एक ही उपाय है—

जब अपवित्र विचार आये, तभी उसके जोड़में तुरन्त पवित्र विचार ला खड़ा करो।

प्रभुकृपासे ही ऐसा बनता है। और प्रभुकी यह कृपा मिलती है—चौबीसों घण्टे ईश्वरनाम लेनेसे और उन्हें अन्तर्यामी मान लेनेसे। रामनाम जीभपर ही आता हो और मनमें दूसरे विचार आते हों, तो रामनाम इतने प्रयत्नपूर्वक लिया जाय कि अन्तमें, जो जीभपर है, वह हृदयमें भी पहला स्थान ले ले।

इसके अलावा—मन चाहे जितना फड़फड़ाये, पर उसे एक भी इन्द्रिय सौंपना नहीं। मन जहाँ ले जाय वहाँ जानेसे जो व्यक्ति जबरन भी इन्द्रियोंको रोक रखता है, वह किसी दिन अपवित्र विचारोंको वशमें करनेमें समर्थ हो सकता है।

मैं तो जानता हूँ कि आज भी यदि मैं इन्द्रियोंको मनकी मर्जीके अनुकूल चलनेकी छूट दे दूँ, तो आज ही मेरा नाश हो जाय!

अपवित्र विचार आये तो उससे डरना नहीं, उससे पीछे नहीं हटना, हिम्मत नहीं हारना, बल्कि और दूने उत्साहसे उसपर हमला करना चाहिये।

प्रयत्नका क्षेत्र सब-का-सब हमारे हाथ है, फलके क्षेत्रको ईश्वरने अपने हाथमें रखा है। अतः उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

जैसे ही अपवित्र विचार आये, वैसे ही सोचो कि तुम जानकीबाई (अपनी पत्नी)-के प्रति बेवफा हो रहे हो, उसके प्रति विश्वासघात कर रहे हो। और कोई साधु पति अपनी पत्नीके प्रति बेवफा नहीं होता। तुम साधु हो।

अपवित्र विचारोंको रोकनेके प्रकृत उपाय तुम जानते ही हो।

अल्पाहार ही करो।

दृष्टि केवल सामनेकी जमीनपर रखकर चलो। आँख मलिन हो जाय, तो उसपर इतना क्रोध करो कि उसे फोड़कर ही रख दोगे।

निरन्तर पवित्र पुस्तकोंका ही संग करो।'

प्रभु तुम्हारी रक्षा करें!

शुभेच्छु—
बापूके आशीर्वाद

प्रेरणादायक कहानी—

'मैं तुम्हारे साथ हूँ'

एक शहरमें प्रतिवर्ष एक माता-पिता अपने पुत्रको गर्मीकी छुट्टियोंमें उसके दादा-दादीके घर ले जाते। दस-बीस दिन सब वहीं रहते और फिर लौट आते । ऐसा प्रतिवर्ष चलता रहा। बालक थोड़ा बड़ा हो गया।

एक दिन उसने अपने माता-पितासे कहा कि अब मैं अकेला भी दादीके घर जा सकता हूँ तो आप मुझे अकेले ही दादीके घर जाने दो।

माता-पिता पहले तो राजी नहीं हुए, परंतु बालकने जब जोर दिया तो उसको सारी सावधानी समझाते हुए अनुमति दे दी। जानेका दिन आया। पिता बालकको छोड़ने स्टेशनपर गये। ट्रेनमें उसको उसकी सीटपर बिठाया। फिर बाहर आकर खिड़कीमेंसे उससे बात की। उसको सारी सावधानियाँ फिरसे समझायीं।

बालकने कहा कि मुझे सब याद है। आप चिन्ता मत करो।

ट्रेनको सिग्नल मिला। ह्वीसिल लगी। तब पिताने एक लिफाफा पुत्रको दिया और कहा कि बेटा अगर रास्तेमें तुझे डर लगे, तो यह लिफाफा खोलकर इसमें जो लिखा है, उसको पढ़ना।

बालकने पत्र जेबमें रख लिया। पिताने हाथ हिलाकर विदा किया। ट्रेन चलती रही। हर स्टेशनपर नये लोग आते रहे, पुराने उतरते रहे। सबके साथ कोई-न-कोई था। अब बालकको अकेलापन लगने लगा।

अगले स्टेशनपर ट्रेनमें ऐसी शख्सियत आयी, जिसका चेहरा बहुत भयानक था। बालक पहली बार बिना माता-पिताके, बिना किसी सहयोगीके यात्रा कर रहा था।

उसने अपनी आँखें बन्दकर सोनेका प्रयास किया, परंतु बार-बार वह भयानक चेहरा उसकी आँखोंके सामने घूमने लगा। बालक भयभीत हो गया। रुआँसा हो गया। तब उसको पिताकी चिट्ठी याद आयी। उसने जेबमें हाथ डाला। हाथ काँप रहा था। पत्र निकाला। लिफाफा खोला और पढ़ा।

पिता ने लिखा था, 'तू डरना मत। मैं पासवाले कम्पार्टमेंटमें ही हूँ, इसी गाड़ीमें बैठा हूँ।' बालकका चेहरा खिल उठा। सब डर काफूर हो गया।

जीवन भी ऐसा ही है। जब भगवान्‌ने हमको इस दुनियामें भेजा, उस समय उन्होंने हमको भी एक पत्र दिया है, जिसमें लिखा है—'उदास मत होना, मैं हर पल, हर क्षण, हर जगह तुम्हारे साथ हूँ।'

परमात्मा पूरी जीवन-यात्रामें प्राणीके साथ रहते हैं। केवल उनका स्मरण करते रहिये। वे कहते हैं, सच्चे मनसे याद करना, मैं एक पलमें आ जाऊँगा।'

इसलिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। घबराना नहीं है। हताश नहीं होना है। चिन्ता करनेसे मानसिक और शारीरिक दोनों स्वास्थ्य प्रभावित होते हैं। परमात्मापर, प्रभुपर, अपने इष्टपर, हर क्षण विश्वास रखें। वे हमेशा हमारे साथ हैं, हमारी पूरी यात्राके दौरान। अन्तिम श्वासतक।

बस, इसी एक एहसासको ही कायम रखनेका प्रयास करते रहना है। सब कुछ उस परमात्मापर छोड़ दें, जिसकी मर्जीके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। [सोशल मीडियासे साभार]

साधकोंके प्रति—

हमारा स्वरूप सच्चिदानन्द है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

यह जो आप मानते हैं कि 'मैं हूँ' तो इसमें एक विशेष बात ध्यान देकर सुनें। आप अकेले 'मैं हूँ' ऐसा मानते हो तो यह 'हूँ' पना एकदेशीय है, और 'तू है', 'यह है', 'वह है'—ये 'है' पना व्यापक है। तो यह 'है' ही 'मैं' के कारण 'हूँ' बना। अगर 'मैं' न हो तो केवल 'है' ही रहेगा। तो यह 'मैं' तब होता है, जब कुछ चाहना होती है। मनुष्य कुछ करना चाहता है, कुछ जानना चाहता है, कुछ पाना चाहता है। तो कुछ-न-कुछ चाहना है, तभी 'मैं हूँ' है। अगर कुछ भी चाहना न रहे, तो 'है' ही रहेगा।

आपने अनादिकालसे 'हूँ' (जो 'नहीं' है)-में अपनी स्थिति मान रखी है। 'है' में स्थिति होनेपर 'हूँ' नहीं रहता। इसकी तो ऐसी महिमा हमने पढ़ी है कि एक बार जो 'है' में स्थित हो गया, तो फिर उसे जानने, करने, पानेकी किंचिन्मात्र भी जरूरत नहीं रहती। वह 'है' में स्थित हो गया तो न करना रहा, न जानना रहा, न पाना रहा। कुछ भी नहीं रहा। एक 'है' ही रह गया। वहाँ तो पूर्णता है। जबतक साथमें नहीं रहता है, तबतक पूर्णता नहीं होती। पूर्णतामें आंशिकरूपसे भी 'नहीं' नहीं रहता। तो एक बार 'है' में स्थिति होनेपर फिर कभी उसमें 'हूँ' नहीं आता। जो 'हूँ' का पुराना संस्कार है, वह मन-बुद्धिमें स्फुरित हो सकता है, पर 'है' में 'हूँ' नहीं आता। मन-बुद्धिमें इसलिये आता है कि मन-बुद्धि उसके साथ रहे हैं। इसलिये जैसे कोई पुरानी बात याद आ जाय, ऐसे 'हूँ' आता है। वास्तवमें तो 'हूँ' है ही नहीं, फिर आये कहाँसे? जो याद आ जाय, वह वास्तवमें होती नहीं। केवल पुरानी देखी, सुनी, भोगी हुई वस्तुकी यादमात्र आती है, वस्तु तो आती नहीं। ऐसे ही 'हूँ' की याद आ जाय, तो वह है नहीं। उस 'है' में सबकी स्थिति है।

अब एक खास बात बतायी जाती है। ध्यान देकर सुनें। वह यह कि वास्तवमें हम क्या चाहते हैं—इसकी तरफ खयाल करें। कई तरहकी चाहनाएँ इकट्ठी करनेके कारण मनुष्य वास्तवमें क्या चाहता है, इसे भूल गया। पर भूलनेपर भी भूलता नहीं। उसे हरदम याद रहता है, परंतु पूछनेपर ठीक जवाब नहीं दे सकता; क्योंकि उसने इसपर अभी विचार ही नहीं किया। यदि विचार करें तो यह पता लगता है कि मैं सदा रहना चाहता हूँ। कोई भी व्यक्ति ऐसा कभी नहीं चाहता कि मैं मिट जाऊँ। किसी वक्त दु:खमें ऐसा कहता है कि मर जाऊँ तो सुखी हो जाऊँ। वह शरीरको दु:खका कारण मानता है, इसलिये दु:ख मिटानेके लिये शरीरको मिटाना चाहता है कि मैं सुखी हो जाऊँ। तो मैं बना रहूँ और सुखी रहूँ—यह चाहना तो रहती ही है। धन, सम्पत्ति, वैभव, मान, बड़ाई, नीरोगता आदिकी जो चाहना होती है, यह असली हमारी चाहना नहीं है। हमारी चाहना तो सदा रहनेकी है। और सदा रहनेका नाम 'है' है। जो नित्य-निरन्तर रहता है, उसे ही 'है' कहते हैं। उस 'है' में स्थित होते ही हमारी नित्य-निरन्तर रहनेकी चाहना पूरी हो जाती है। पर यदि दूसरी चाहना करता है, तो 'है' से अलग हो जाता है; क्योंकि जो चीज अभी नहीं है, उसे पानेकी चाहना हुई, तो चाहना 'नहीं' की ही हुई। 'नहीं' को पकड़नेसे ही चाहना होती है। यदि 'नहीं' को न पकड़े, तो 'है' में ज्यों-का-त्यों है।

चाहना सदा 'नहीं' की होती है। 'है' पन तो सदा रहता है, कभी मिटता नहीं। जिस अंशमें 'है' से विमुख होते हैं, उसी अंशमें 'नहीं' की चाहना करते हैं। चाहनासे ही उस अंशमें 'है' से अलग होते हैं, नहीं तो 'है' से अलग होनेकी सामर्थ्य किसीमें है नहीं। चाहनेपर भी अपना होनापन तो मानते ही हैं। 'नहीं' की चाहनाका त्याग कर दें, फिर 'है' में स्थिति स्वत:सिद्ध है।

हम ज्ञान चाहते हैं, जानना चाहते हैं। तो यह जानना भी 'है' में स्वत: सिद्ध है, पर 'नहीं' को पकड़नेसे जाननेकी चाहना होती है। यदि 'नहीं' को न पकड़ें तो जाननेकी चाहना भी समाप्त हो जायगी।

हम क्या नहीं चाहते हैं? हम दुखी होना नहीं चाहते हैं। 'है' में दु:ख है ही नहीं। ज्ञानमें दु:ख है

ही नहीं। किसी बातका ज्ञान हुआ, तो स्वतः एक शान्ति, एक सुखका अनुभव होता है; क्योंकि ज्ञान आनन्दरूप है।

इस प्रकार हमारी चाहना हुई—सत्, चित् और आनन्दकी प्राप्ति, जो स्वतः अपनेमें है। जो मिटता है, उसे 'असत्' कहते हैं, पर जो कभी नहीं मिटता, उसे 'सत्' कहते हैं। जिसमें ज्ञान नहीं है, उसे जड़ कहते हैं। तो ज्ञानमात्र चेतन है। जहाँ कभी दुःख आता ही नहीं, वही आनन्द है। तो ये सत्, चित् और आनन्द सबको स्वतः प्राप्त हैं। हमारा स्वरूप सच्चिदानन्द है। अब जहाँ उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुको पकड़ा कि आफत आयी। जो उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तु है, वह आपका स्वरूप नहीं है। उसे पकड़नेसे ही दुःख पा रहे हैं। धन नहीं है, पुत्र नहीं है, घर नहीं है—इस प्रकार कई तरहकी नहीं-नहींको पकड़ लिया। इसी कारण अपने सच्चिदानन्दस्वरूपका अनुभव नहीं हो रहा है।

प्रश्न—अपने स्वरूप 'है' में स्थिति होनेके बाद भी पुराने संस्कार आते हैं क्या?

उत्तर—पुराने संस्कार 'है' में नहीं आते, मन-बुद्धिमें आते हैं। संस्कार तो मन-बुद्धिमें पड़े हुए हैं, पर उनको अपनेमें मान लेते हो। अनादिकालसे ही मन-बुद्धिमें आनेवाले संस्कारोंको अपनेमें मानते चले आये हैं। पर ये अपनेमें आते ही नहीं। कारण कि ये आने-जानेवाले हैं और स्वयं रहनेवाला है। आने-जानेवालेका प्रवेश मन-बुद्धिमें तो हो सकता है, पर 'है' में कभी प्रवेश नहीं हो सकता। 'है' में 'नहीं' का प्रवेश कैसे हो सकता है? केवल आप नहींको भूलसे अपनेमें मानकर उससे सम्बन्ध जोड़ लेते हैं।

स्वरूपमें आकर्षण-विकर्षण भी बिलकुल नहीं है। ये तो मन-बुद्धिमें हैं। थोड़ा-सा ध्यान दें कि आकर्षण और विकर्षण—ये दोनों किसी ज्ञानके अन्तर्गत दीखते हैं। तो उस ज्ञानमें ये दोनों कहाँ हैं? जैसे प्रकाशमें हाथ दीखता है, तो हाथके अन्तर्गत प्रकाश नहीं है, बल्कि प्रकाशके अन्तर्गत हाथ है। ऐसे ही मन-बुद्धिमें होनेवाले आकर्षण-विकर्षण ज्ञानके अन्तर्गत हैं। ज्ञान कहो या 'है' कहो। उसमें आपकी स्वतः स्वाभाविक स्थिति है।

प्रश्न—जबतक यह शरीर है, तबतक अन्तःकरणमें ये विकार होते रहेंगे?

उत्तर—नहीं, बिलकुल नहीं? अन्तःकरणके विकार शरीरके रहनेसे सम्बन्ध नहीं रखते। अन्तःकरणमें विकार रहते हैं—असत्को सत् माननेसे, 'हैं' को 'नहीं' माननेसे। असत्को सत् माना कि विकार आये। असत्को सत् न माननेसे शरीरके रहते हुए भी विकार नहीं आयेंगे। शरीरका वृद्ध होना, कमजोर होना आदि विकार तो अवस्थाके अनुसार स्वतः स्वाभाविक होंगे। पर आकर्षण-विकर्षण आदि जो विकार हैं, ये नहीं होंगे। ये तो असत्में सत्-बुद्धि होनेसे ही होते हैं। खूब विचार करो। असत् असत् ही है और सत् सत् ही है। आप 'है' में स्वतः स्थित हो। स्थित न होनेपर ही स्थित होना पड़ता है। जिसमें पहलेसे ही स्थित हो, उसमें स्थित क्या होना? आप 'है' में स्थित हो, तभी आने-जानेवाले दीखते हैं।

किसी पुरुषने किस परिस्थितिमें कौन-सी चेष्टा की, यह सिवाय उसके दूसरा कोई नहीं जान सकता। इसलिये किसीपर आक्षेप न करके सत्यका निर्णय करना चाहिये। दूसरेको सामने रखकर सत्यका निर्णय कभी नहीं हो सकता। अपनेको सामने रखो। यदि दूसरेका आदर्श लेना पड़े, तो शुभ कार्योंमें ही लो, अशुभ कार्योंमें नहीं।

❀ शरीरादि सांसारिक पदार्थोंको अपना मानना ही बन्धन है और अपना न मानना ही मुक्ति है। अपना मानने अथवा न माननेमें सब-के-सब स्वतन्त्र हैं।

❀ संसारके सब सम्बन्ध मुक्त करनेवाले भी हैं और बाँधनेवाले भी। केवल परमार्थ (सेवा) करनेके लिये माना हुआ सम्बन्ध मुक्त करनेवाला और स्वार्थके लिये माना हुआ सम्बन्ध बाँधनेवाला होता है। [अमृत-बिन्दु]

श्रीरामचरितमानसमें 'ब्राह्मण' की परिभाषा

(डॉ० श्रीहरिहरनाथजी हुक्कू, एम० ए०, डी० लिट०)

(१)

एक बार मेरे निवास-स्थानपर श्रीरामचरितमानसकी कथा हो रही थी। नगरके चुने हुए पूज्य मानस-प्रेमी तथा मानस-विद्वान् एकत्रित थे। श्रीरामचरितमानसकी कथामें प्रसंगवश ब्राह्मणोंकी चर्चा आयी, जिनके प्रति गोस्वामी तुलसीदासजीने विशेष आदरसूचक भाव प्रकट किया है। तब एक आदरणीय मानस-विद्वान्ने कहा कि स्वयं ब्राह्मण होनेके नाते गोस्वामीजीने ब्राह्मणोंका इतना आदर किया है और उनके ब्राह्मण-सम्बन्धी वाक्य आजकलके प्रजातन्त्रवादी समयके अनुकूल नहीं हैं। उनका कहना था कि यदि हम परमात्माको परम पिता मानें तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उस परमात्माकी दृष्टिमें सब समान हैं, सब पुत्रवत् हैं, चाहे ब्राह्मण हों या शूद्र; क्योंकि परमात्मा सत्य और न्यायकी मूर्ति हैं। इसलिये न्यायसंगत यही है कि परमात्माकी दृष्टिमें मानवमात्रको समान माना जाय और यदि विशेष अधिकार दिया भी जाय तो वह शूद्रोंको मिले। शंकाकारका तर्क यह था कि चतुर्वर्णकी प्रणाली एक सामाजिक संगठनकी आवश्यकता थी और इसका विचार आध्यात्मिक चर्चामें करना अनुचित है।

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

ऐसे पतितपावनके दरबारमें वर्णको स्थान देना न्यायसंगत नहीं दीख पड़ता और कम-से-कम इस छन्दसे तो ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठता प्रतिपादित नहीं होती।

इस शंकाका समाधान कई प्रकारसे हो सकता है; परंतु कविवर तुलसीदासजीकी जो शैली है, उसके अनुसार प्रत्येक शंकाका समाधान श्रीरामचरितमानसमें ही मिल जाता है। इसलिये अधिक उपयुक्त यही होगा कि श्रीरामचरितमानसके शब्दोंमें ही इस शंकाका समाधान ढूँढ़ा जाय।

(२)

काकभुशुण्डि जब गरुड़से अपना इतिहास वर्णन कर रहे थे, तब उन्होंने अपने पूर्वजन्म-प्रसंगमें कहा—

एक बार हर मंदिर जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आयउ अभिमान तें उठि नहिं कीन्ह प्रनाम॥
सो दयाल नहिं कहेउ कछु उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता सहि नहिं सके महेस॥

काकभुशुण्डिके इस अनुचित व्यवहारका परिणाम यह हुआ कि रुद्रभगवान्ने काकभुशुण्डिको घोर शाप दे दिया। तब—

हाहाकार कीन्ह गुर दारुन सुनि सिव साप।
कंपित मोहि बिलोकि अति उर उपजा परिताप॥
करि दंडवत सप्रेम द्विज सिव सन्मुख कर जोरि।
बिनय करत गदगद स्वर समुझि घोर गति मोरि॥

गुरुकी भक्तिसनी कोमल वाणीमें स्तुति सुनकर आशुतोष कृपाल प्रसन्न हो गये। उन्होंने गुरुको वरदान दिया। गुरुने शंकरभगवान्को प्रसन्न देखकर उनसे यह प्रार्थना की—

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना॥

इस प्रकार काकभुशुण्डिके गुरुकी आर्त प्रार्थनापर महादेवजीने काकभुशुण्डिके 'परम कल्याना' के निमित्त जो रहस्य बतलाया वह यह था—

सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई॥

ज्ञान और भक्तिके गूढ़तम रहस्यको जाननेवाले शंकरभगवान्ने ***'द्विज सेवकाई'*** के व्रतको ***'हरितोषन ब्रत'*** कहा। काकभुशुण्डिको यह संदेह न रहे कि वे 'द्विज कौन हैं', जिनकी सेवासे हरि तृप्त हो जाते हैं, इसलिये शंकरभगवान्ने ब्राह्मणका अर्थ दूसरी ही पंक्तिमें स्पष्ट कर दिया। उन्होंने कहा—

अब जनि करहि बिप्र अपमाना।

क्योंकि—

जानेसु संत अनंत समाना॥

अर्थात् संतको—विप्रको—अनन्तके समान, भगवान्के समान जानना। इस प्रकार विप्रकी शंकरभगवान्ने संतके साथ समानता प्रतिपादित की।

इस अर्धालीमें 'विप्र' और 'संत' शब्दोंका पर्यायवाची प्रयोग हुआ है। इसलिये विप्रके लक्षण जाननेके लिये संतके गुण जानने आवश्यक हैं।

श्रीरामचरितमानसके आरम्भमें संतोंके गुणोंकी चर्चा

करते हुए भक्तवर तुलसीदासजीने कहा है—

संत सरल चित जगत हित

और किस प्रकार संत जगत्‌-हित करते हैं, यह समझाते हुए कविवर कहते हैं—

जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।

संतोंका जीवन दूसरोंके कल्याणार्थ अर्पित होता है और विप्रोंका गुण भी यही है कि वे परहितरत हों। इसीलिये काकभुशुण्डिके गुरुकी शिष्यकल्याणरत वाणीको कविवर तुलसीदासजीने 'बिप्र गिरा' कहा है; क्योंकि काकभुशुण्डिके गुरुकी गिरा दूसरेके हितका साधन कर रही थी।

बिप्र गिरा सुनि पर हित सानी।

गोस्वामीजीने उन गुरुके लिये 'बिप्र' और 'द्विजवर' शब्दोंका प्रयोग किया है, जो काकभुशुण्डि-जैसे शिष्यसे अपमानित होनेपर भी शिष्यके कल्याणकी ही प्रार्थना शंकरभगवान्‌से करते हैं।

सुनि बिनती सर्बग्य सिव देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभबानी भइ द्विजबर बर मागु॥

गुरुको 'बिप्र' और 'द्विजबर' शब्दोंसे सम्बोधन करनेका कारण यह है कि गोस्वामीजीके कथनानुसार ब्राह्मणको विशेष प्रकारसे क्षमाशील होना चाहिये। इसी आशयसे श्रीरघुनाथजीने धनुषभंगके उपरान्त कुपित परशुरामको स्मरण दिलाया था कि—

चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी।

और जब यह ब्राह्मणोचित कृपाका गुण परशुराममें लुप्त हो गया, तब उनका ब्रह्मबल दुर्बल पड़ गया और वे अजेय ब्राह्मणश्रेष्ठ होते हुए भी एक क्षत्रिय राजकुमारसे पराजित हुए।

श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें प्रजाको उपदेशवाले प्रसंगमें श्रीरघुनाथजीने सबको यह विश्वास दिलाया—

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥

यहाँ प्रश्न यह होता है कि वे कैसे द्विज होने चाहिये, जिनकी सेवा करनेसे देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं? इसका उत्तर शंकरभगवान्‌के निम्नलिखित शब्दोंसे स्पष्ट है—

क्षमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥

अर्थात् क्षमाशील ब्राह्मण, जो संतोंके समान पर-उपकारी हों, वे खरारि श्रीरघुनाथजीके समान मुझे प्रिय हैं। शंकरभगवान्‌ने क्षमाशील संत-स्वभाव ब्राह्मणको देवताके समान पदवी दी।

(३)

ब्राह्मणका धर्मपर अटल रहना उसका विशेष गुण है। धर्म भी ब्राह्मणका गोस्वामीजीके अनुसार वैदिक-धर्म होना चाहिये। जिस ब्राह्मणका ऐसा आचरण नहीं होता, उसकी गति गोस्वामीजी शोचनीय समझते हैं। मुनिवर वसिष्ठ कहते हैं—

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥

इसी आशयसे शंकरभगवान्‌ने गिरिजासे कहा—

धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई।

ब्राह्मणका धर्म यह है कि वह परमार्थ-तत्त्व ग्रहण करके लोगोंको भक्ति-पथपर अग्रसर करे। जब श्रीरघुनाथजी मुनि विश्वामित्रके आश्रममें जाकर रहे, तब वहाँ—

भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥

विप्रका यही धर्म है कि वह स्वयं परमार्थी हो और दूसरोंको भी परमार्थ-पथपर ले चले। एक उत्कृष्ट विप्रका वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काजु न दूजा॥
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक॥

गोस्वामीजीका कथन है कि विप्रका एक ही कर्म है और वह यह कि विप्र सदा पूजा करता रहे, हर समय भगवत्‌-आराधनामें मग्न हो। विप्र साधु ही नहीं, बल्कि 'परम साधु' होता है; क्योंकि उसका सम्पूर्ण जीवन दूसरोंके कल्याणके लिये, परहितके लिये समर्पित रहता है। अतएव विप्र परम धार्मिक होता है; क्योंकि परहितमें तत्पर रहना धर्मका लक्षण है, जैसा कि श्रीरघुनाथजीका वचन है—

पर हित सरिस धरम नहिं भाई।

इस प्रकार परहितस्वरूप धर्ममें लगा हुआ विप्र परमार्थबिंदक—अर्थात् आत्मतत्त्ववेत्ता हो जाता है। कर्मसे ***'बैदिक सिव पूजा करइ'***, मनसे ***'परम साधु'*** और वचनसे ***'नहिं हरि निंदक'*** तीनों प्रकारसे विप्र शुद्ध सात्त्विक होते हैं। ऐसे ही ब्राह्मणोंकी वन्दना गोस्वामीजीको अभीष्ट है। जब उन्होंने ब्राह्मण-वन्दना की और कहा—

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना।

तब उन्होंने ब्राह्मणकी परिभाषा भी स्पष्ट कर दी।

उनके विचारसे महीसुर वे ही हैं, वन्दनीय ब्राह्मण वे ही हैं, जो जन्मसे ब्राह्मण होते हुए मोह-भ्रमनाशक भी हैं।

मोह जनित संसय सब हरना।

आत्मतत्त्ववेत्ता होना ही यथेष्ट नहीं है, केवल परमार्थज्ञाता होनेसे ही काम नहीं चलता, परहितकारक होनेके नाते ब्राह्मणके लिये परमार्थ-ज्ञानसे दूसरोंका मोहजनित संशयहरण करना उसका धर्म है।

बिनु सतसंग बिबेक न होई।

बिना जिनके सत्संगके ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता और अविवेक नहीं मिट सकता, ऐसे ही संतस्वरूप द्विज सच्चे ब्राह्मण हैं, वे ही वन्दनीय हैं, जो परमार्थबिंदक होकर लोगोंके मोहजनित संशयका हरण करते हैं, अज्ञानका हरण करते हैं। यही ब्राह्मणका धर्म है और यदि कोई ब्राह्मण इस धर्मको भूल जाय और विषय-लयलीन हो जाय तो निश्चय ही उसकी दशा बहुत शोचनीय है।

ब्राह्मणको ब्रह्मकी जिज्ञासामें लीन रहना चाहिये, न कि विषय-भोगमें। 'परमार्थ बिंदक' होनेके नाते विप्र रामानुरागी होते हैं। ऐसा होना उनके लिये ठीक भी है; क्योंकि यदि विप्र रामानुरागी न हो तो पूजामें सदा लीन कैसे रहे? वैदिक पूजा करना ही विप्रका सबसे बड़ा और एकमात्र कार्य है।

तेहि काजु न दूजा।

जो रामानुरागी होते हैं, उनका वह स्वभाव होता है कि—

रमाबिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥

रामभक्त, रामानुरागी रमाविलासको भी त्याज्य समझते हैं और उससे दूर रहते हैं। इसलिये गोस्वामीजीने ऐसे विप्रोंकी दशा शोचनीय बतलायी है, जो रामानुरागी होनेके स्थानपर विषयानुरागी हों। सच्चे ब्राह्मण सदाचारके निकेतन होते हैं और दयालु-स्वभाव होते हैं।

द्विज दयाल अति नीति निकेता।

'नीतिनिकेता' से यहाँ राजनीति या लोकनीति अथवा व्यावहारिक नीतिके निकेत होनेका भाव नहीं है। शंकरभगवान्‌का वचन है—

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥

'नीतिनिकेता' का अर्थ है 'श्रुतिसिद्धान्त' को ठीकसे जाननेवाला, इसलिये विप्रको श्रुति-सिद्धान्तके ज्ञानमें निपुण होना चाहिये। श्रुति-सिद्धान्तका तत्त्व क्या है, जिसके जानने और समझनेकी निरन्तर लालसा विप्रको बनी रहती है, इसे गोस्वामीजीने पार्वतीजीके श्रीमुखसे स्पष्ट करवाया है।

आर्त भावसे वे शंकरभगवान्‌से विनयपूर्वक कहती हैं—

बंदउँ पद धरि धरनि सिरु बिनय करउँ कर जोरि।
बरनहु रघुबर बिसद जसु श्रुति सिद्धांत निचोरि॥

अतएव—***'श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना'*** जिन्होंने श्रीरघुनाथजीके गुणोंका निरन्तर गान करना सीखा। विप्र संत हैं, परहितरत हैं, जग-मंगल-अभिलाषी हैं तो इनके लिये श्रीरघुनाथजीके गुण-ग्रामके निरन्तर गानसे अधिक प्रिय कौन-सी वस्तु हो सकती है? सिवा श्रीरघुनाथजीके गुणोंके और कौन-सी वस्तु जग-मंगलकारक है?

जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥
सदगुर ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के॥

ऐसे ही भक्त ब्राह्मणोंको गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानस-सरके रखवारोंकी पदवी दी है—

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिन महीसुरोंको गोस्वामीजीने प्रथम वन्दनीय समझा, वे केवल जन्मसे ब्राह्मण होनेके कारण पूज्य नहीं थे। कलिकालके पथभ्रष्ट ब्राह्मणोंका वर्णन तुलसीदासजीने तीन स्थानोंपर इस प्रकार किया है—

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥
× × × × × × × × × **द्विज चिह्न जनेउ उघार तपी॥**

कलियुगके पतित ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें तुलसीदासजीने यह कहा है कि वे वेदोंको बेचनेवाले हैं अर्थात् वेदोंका श्रुतिसम्मत अर्थ न करके स्वार्थवश धनके लोभसे लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये, उनकी हाँ-में-हाँ मिलानेके लिये अर्थका अनर्थ करते हैं। कहाँ तो गोस्वामीजीके कथनानुसार वैदिक पूजामें निरन्तर मग्न ब्राह्मण और कहाँ कलियुगके भ्रष्ट ब्राह्मण, जो निगमकी आज्ञाका पालन ही नहीं करते। ऐसे भ्रष्ट ब्राह्मण अपढ़, लोभी, कामी, शुभाचार-विमुख, मूर्ख और नीच जातिकी व्यभिचारिणी स्त्रियोंके स्वामी होते हैं। कलियुगमें द्विजका चिह्न जनेऊमात्र रह जाता है,

जैसे नंगे बदन रहना तपस्वियोंका एकमात्र चिह्न है। इस प्रकार गोस्वामीजीने पथभ्रष्ट ब्राह्मणोंके अवगुणोंके वर्णनमें संकोच नहीं किया है। निश्चय ही ऐसे अवगुणप्रधान असंत ब्राह्मणोंके लिये तुलसीदासजीने यह नहीं कहा—

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना।

क्योंकि वे मोहजनित संशयोंके हरणमें असमर्थ हैं। जिन द्विजोंको उन्होंने वन्दनीय माना, वे शुद्ध, सात्त्विक, पर-उपकारी, क्षमाशील, परमार्थविन्दक, श्रुति-सिद्धान्तके निचोड़रूप रामगुण-ग्रामके निरन्तर गायक, हर समय भगवदाराधनामें लीन महापुरुष हैं। वे तपस्वी हैं; क्योंकि श्रीरामचरितमानसमें कहा है कि—

तपबल बिप्र सदा बरिआरा।

तपबलसे ही ब्राह्मण सदा बलवान् रहते हैं।

चित्रकूटमें जब गुरु वसिष्ठको, माताओंको, भरतको, अयोध्यावासियोंको और राजा जनक तथा उनके समाजको रहते-रहते कुछ दिन बीत गये, तब एक दिन—

गे नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी॥
सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रौरें हाथा॥

गुरु वसिष्ठने यह स्नेह और शीलयुक्त श्रीरघुनाथजीके वचन राजाको सुनाये। राजा जनक श्रीरघुनाथजीके वचन सुनकर प्रेममग्न हो गये। उनका ज्ञान और वैराग्य छूट गया।

सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं। आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥
रामहि रायँ कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना॥
हम अब बन तें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥
तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेम बस बिकल बिसेषी॥

कविवर तुलसीदासजीने इस चौपाईमें 'महिसुर' को 'तापस' और 'मुनि' के साथ एक ही श्रेणीमें रखकर 'महिसुर' के वास्तविक रूपकी ओर संकेत किया है। यह रूप अयोध्याकाण्डके २४४ वें दोहेके बादके प्रसंगसे और भी स्पष्ट हो जाता है, जहाँ अयोध्यासे आये हुए लोगोंके साथ श्रीरघुनाथजीके मिलनेका प्रसंग है। माताओंसे मिलनेके बाद दोनों भाइयोंने ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसहित गुरुपत्नी अरुन्धतीके चरणोंकी वन्दना की।

गुर तिय पद बंदे दुहु भाईं। सहित बिप्रतिय जे सँग आईं॥

इसके बाद नौ पंक्तियोंके पश्चात् महारानी श्रीसीताजी भी उन्हीं स्त्रियोंसे मिलीं, जिनसे श्रीरघुनाथजी और लखनलाल मिल चुके थे।

सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी॥
गुरपतिनिहि मुनि तियन्ह समेता। मिली पेमु कहि जाइ न जेता॥

श्रीरघुनाथजी और लखनलाल जिन स्त्रियोंसे मिलते हैं, वे 'गुरतिय' और 'बिप्रतिय' हैं। और जब महारानी श्रीसीताजी उन्हीं स्त्रियोंसे मिलती हैं, तब कविवर तुलसीदासजी 'गुरपतिनि' और 'मुनितिय' शब्दोंका प्रयोग करते हैं। 'गुरतिय' के स्थानपर 'गुरपतिनि' और 'बिप्रतिय' के स्थानपर 'मुनितिय' का प्रयोग कविवरने किया है। इस प्रकार 'मुनि' शब्द 'विप्र' के पर्यायवाचीके रूपमें प्रयोग हुआ है। गोस्वामी तुलसीदासजीकी दृष्टिमें जो वन्दनीय महीसुर हैं, वे तापस और मुनिकी श्रेणीके हैं। वे उन ब्राह्मणोंके समान नहीं हैं, जो केवल जनेऊधारी होनेके कारण अपनेको ब्राह्मण कहलानेके अधिकारी समझते हैं। ऐसे हरिभक्त, परकल्याणरत, धर्मात्मा, परमार्थवादी, मुनिसमान विप्रके प्रति गोस्वामीजीका इतना अधिक आदर था कि उन्होंने यहाँतक कह दिया कि शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य है—

सापत ताड़त परुष कहंता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥

तुलसीदासजी यह नहीं कहते हैं कि यह बात मैं कह रहा हूँ और यह मेरा विचार है। वे कहते हैं कि यह बात मैंने संतोंसे बार-बार सुनी और विस्तारसे सुनी ***'गावहिं संता।'*** शंकरभगवान्का वचन है—

उमा जे रामचरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

गोस्वामीजीके मतानुसार जो वन्दनीय महीसुर हैं, वे रामानुरागी हैं, वे रामचरण-रत हैं। ऐसे मुनि-तुल्य संत कैसे किसीसे विरोध कर सकते हैं। भक्तवर तुलसीदासजीकी भाषामें विप्र कहलानेके अधिकारी वे ही हैं, जो पर-उपकारी, परमार्थी, विशद रामयशके निरन्तर गायक, विषय-त्यागी और तपस्वी हैं और यदि ऐसा कोई महात्मा किसीको शाप देनेका, मारनेका, कठोर वचन कहनेका नाटक कर रहा है तो निश्चय ही इसमें कोई-न-कोई कल्याणप्रद रहस्य निहित है। इसलिये ऐसे कठोर कर्म करता हुआ भी एक उत्कृष्ट संतस्वरूप विप्र पूज्य है।

गीता ब्रह्मविद्या है

(श्रीओमप्रकाशजी पोद्दार)

गीता पूरी तरहसे आत्मविज्ञान है। आत्माको जाने बिना मनुष्य सदा भयभीत रहता है। अर्जुनके मनमें भी नाना प्रकारके भय समा गये थे। इसलिये भगवान्ने उसे गीतोपदेशद्वारा आत्मज्ञान दिया। गीता हमारे चंचल मनके भागनेके सारे रास्ते युक्तिपूर्वक (Logically) निरुद्ध करके उसे सीधे आत्माकी तरफ ले जाती है। इसीलिये अर्जुन जब स्थितप्रज्ञ होनेके बाहरी लक्षण पूछता है, तो भगवान् उसको आन्तरिक लक्षण बताते हैं—

'प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।' फलतः विषयोंमें भटकनेवाला हमारा मन हमारी सर्वव्यापी आत्मामें चला जाता है। इस प्रकार ७०० श्लोकवाली गीतामें ८४ श्लोक अर्जुनके नाना प्रकारके घुमा-फिराकर (प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन, सेवया) किये हुए प्रश्न और उद्गार हैं। ८४ वें श्लोकमें वह मान लेता है कि उसे आत्माकी सुधि आ गयी है।

कृष्ण योगेश्वर हैं (Master of all sciences) और गीता योगशास्त्र (Science of the Self) है। योगद्वारा ही आत्माका हमसे संयोग हो सकता है; क्योंकि पतंजलिसूत्रके अनुसार **'योगः चित्तवृत्तिनिरोधः'** है, यानी योगद्वारा ही चित्तवृत्तियोंको सही दिशामें ले जाकर आत्माका साक्षात्कार तत्काल किया जा सकता है।

गीता ब्रह्मविद्या (Technology of knowing the whole truth) है। यानी हमारी चेतनाको ब्रह्मद्वारा संस्पर्श करानेकी विद्या है। हम जीव हैं। हमारा ज्ञान अधूरा है। हमारा मस्तिष्क भी अपनी क्षमताका सिर्फ ८-१० प्रतिशत ही सक्रिय है। ब्रह्ममें अनन्त ज्ञान और ऊर्जा है। ब्रह्मसे हमारा संस्पर्श होते ही हमारा मस्तिष्क चार्ज होकर १०० प्रतिशत सक्रिय हो उठता है, जिससे अत्यन्त सुखका अनुभव होता है। **'सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते'** और विद्युत्के फ्लैशकी तरह हमें आत्माका अनुभव हो जाता है। आत्मतत्त्वका अनुभव होते ही तत्काल हमारी जीव नामक उपाधि मिट जाती है और परमात्माकी परम सत्ताका ज्ञान हमें तुरन्त हो जाता है। हमें वह अद्भुत ज्ञान होता है, जिसको सातवें अध्यायमें भगवान्ने 'विज्ञानसहित ज्ञान' का नाम दिया है। जिस ज्ञानको रामचरितमानसमें भगवान् रामने काकभुशुण्डिजीको दिया है। जिसको जाननेके बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता और संसार जो इतने विशाल कलेवरमें इतने विराट् पदार्थ-समूहको अपने-आपमें समेटे हुए अनादिकालसे अनन्तकालतक चलता हुआ दिख रहा है, तत्काल बिलकुल मिट जाता है और वह 'तत्त्वज्ञान' कि 'सब कुछ वासुदेव ही है'—**'वासुदेव सर्वं इति'** जो बहुत जन्मोंमें संसिद्ध होनेपर होता है, इसी जन्ममें हो जाता है।

इससे भी अद्भुत ज्ञान जिसे भगवान्ने नवें अध्यायमें 'गुह्यतम' अर्थात् परम गोपनीय और पुनः 'विज्ञानसहित ज्ञान' कहा है, वास्तवमें सब विद्याओंकी राजविद्या है। इससे हमें प्रत्यक्ष अनुभव हो जाता है कि संसार होते हुए भी नहीं है, क्योंकि जबतक आत्मा और परमात्माका हमें अनुभव नहीं होता, तबतक संसार रहता है। गीता कहती है कि यह संसार परमात्मामें उनके संकल्पके आधारपर स्थित है और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि संसार तो परमात्मामें है, लेकिन संसारमें परमात्मा नहीं है। अतः आत्माका ज्ञान होते ही संसार तो मिट जाता है, लेकिन परमात्मा रह जाता है। इससे सिद्ध होता है कि वैज्ञानिकोंद्वारा खोजा जानेवाला 'द्रव्यान्तक द्रव्य' (Antimatter) या दिव्यमणि आत्मा ही है और कुछ नहीं है, जो हमारे हृदयमें ही है। कोई यह दलील दे सकता है कि संसार किसी एकके लिये भले ही गायब हो जाय, लेकिन औरोंके लिये तो रहेगा ही। इसका जवाब यही है कि जबतक हम जीव हैं, तबतक तो रहेगा ही। जिस सृष्टिका हमारी महान् आत्माने ही हमारे लिये निर्माण किया है, उसको हम शरीरद्वारा कैसे मिटा सकते हैं। शरीर तो आत्माका चोलामात्र है। आत्माका अनुभव

होगा, तभी तो मिटेगा। यही तो परम गोपनीय रहस्य है, जिसको भगवान् गीताके माध्यमसे हमें बताना चाहते हैं। बिना आत्माके जाने ही यह रहस्य समझमें आ जाय तो परमगोपनीयका क्या अर्थ रह जायगा। वैसे यह खुशीकी बात है कि आईन्सटाईनके द्वारा समय, स्पेस और पदार्थकी अवधारणा आमूल-चूल बदल देनेके बाद पश्चिम संसार (Western World)-में भी सत्यकी धारणा (Concept of Reality) बहुत-कुछ बदल गयी है और भारतीय चिन्तनधाराकी तरफ मुड़ गयी है।

गीतामें अन्तिम, सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे गुह्यतम (अर्थात् सम्पूर्ण गोपनीयोंसे भी गोपनीय) बात जिसको भगवान् नवें अध्यायके निष्कर्षके रूपमें बोल चुके हैं, उसको पुन: जोर देकर अठारहवें अध्यायके शेषमें कहते हैं—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

यह भगवान्‌का 'सर्वगुह्यतम' और हमारे हितमें कहा हुआ वचन है। अत: इस विषयमें तर्क-वितर्क नहीं करके इसको मान लेनेमें ही अपना कल्याण है। यह गीताका 'आत्मतत्त्वी' ज्ञान है। इसलिये अपना मन संसारमें नहीं लगायें; क्योंकि हम एक ऐसे विचित्र संसारमें हैं, जो दिख तो सब जगह रहा है, लेकिन है 'कहीं नहीं'। जिसमें महसूस तो हम सब कुछ कर रहे हैं, लेकिन उसमें है 'कुछ' भी नहीं। और जिसको हम भूत, भविष्य और वर्तमान, तीनों कालमें सत्य तो मान बैठे हैं, लेकिन वह है 'कभी' भी नहीं। यह मैं नहीं कह रहा हूँ, संसारकी द्वन्द्वात्मक सत्यता ही चुपकेसे हमारे कानमें यह बात कह रही है। इसीलिये कहा जाता है कि ***'यह दुनिया है फानी, है सबकी जानी पहचानी, पर हाथ किसी के न आई।' 'मुट्ठी बाँधे आया था पर हाथ पसारे जायेगा।'*** भगवान् शिव भी स्वयं पार्वतीजीसे कह रहे हैं ***'उमा कहउँ मैं अनुभव अपना, सत हरि भजन जगत सब सपना'*** भगवान् शिवका यह अनुभव गलत नहीं हो सकता। इसलिये हमें अपने मन, शरीर और बुद्धिको पूरी तरह परमात्मामें लगा देना चाहिये। यही भगवान्‌का अन्तिम उपदेश है और यही हमारी अपनी आत्माकी आवाज है। इसको हम नहीं सुनेंगे और दुनियाके धोखेमें रहेंगे तो संसारके अनिवार्य फलरूप दु:ख और मृत्युसे हमें कोई नहीं बचा सकता, स्वयं भगवान् भी नहीं। लेकिन सारे तर्कोंको छोड़कर मेरी शरणमें आ जाओ तो मैं तुमको बचा लूँगा। यही सबसे गुह्यतम बात है।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:॥

(गीता १८। ६६)

इस प्रकार गीताका मुख्य उद्देश्य ज्ञान देना नहीं है। ज्ञान तो गीताका सह उत्पादन (By-Product) है। गीताका मुख्य उद्देश्य तो अपने-आपसे हमारी पहचान कराना (Identity by the Self) है। इसीलिये पूरी गीता सुननेके बाद भी अर्जुन यह नहीं बोला कि मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है, बल्कि यह बोलता है कि मेरा मोह नष्ट हो गया है, मुझे 'स्मृति' प्राप्त हो गयी है, अब मैं आपके कहे अनुसार ही करूँगा। अर्जुनके 'स्मृतिर्लब्धा' बोलते ही भगवान् समझ गये कि इसको गीताका 'मर्म' समझमें आ गया है। अत: उसके बाद भगवान् एक शब्द भी नहीं बोले। यदि भूलसे भी अर्जुन 'स्मृतिर्लब्धा' की जगह **'ज्ञानं लब्ध:'** बोल देता तो अर्जुनकी खैर नहीं थी, क्योंकि भगवान्‌का एक हाथ जहाँ ज्ञानकी मुद्रामें उठा हुआ था, वहीं दूसरे हाथमें चाबुक भी थी—

प्रपन्न पारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नम:॥

हमें दूसरोंके दोषोंकी ओर नहीं देखना चाहिये, क्योंकि हम अपना कितना ही सुधार कर लें, सुधारकी और गुंजाइश रहती है। हमें दूसरोंके अज्ञानकी तरफ भी नहीं देखना चाहिये, क्योंकि हममें कितना ही ज्ञान हो जाय, ज्ञानकी और गुंजाइश रहती है। कोई भी मनुष्य पूर्ण नहीं है। "No Man is Perfect" सिर्फ श्रीकृष्ण ही पूर्ण हैं। मेरा यह ज्ञान कृष्णका ही दिया हुआ है। इसलिये **'कृष्णार्पणमस्तु'**।

गीता आत्माका सम्पूर्ण विज्ञान है। आधुनिक शैलीमें कहा जाय तो गीता आत्माका ओ०टी० यानी ऑपरेशन थियेटर है और कृष्ण आत्माको जाननेवाले सबसे बड़े डॉक्टर हैं। अर्जुनकी तरह इस ओ०टी०में हम घुस जायँ तो अपनी आत्माके साथ ही बाहर निकलेंगे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। चौरासी लाख योनियोंमेंसे गुजरनेके बाद हमें यह एक अवसर मिला है। इस अवसरको हम यूँही नहीं खो सकते। अत: गीतामाताकी कृपासे हम अपने ***'आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा'***को अवश्य प्राप्त करेंगे।

आत्माके विषयमें बहुत-कुछ कहने-सुननेसे क्या लाभ? मुण्डकोपनिषद्के अनुसार यह आत्मा न तो प्रवचनोंसे प्राप्त हो सकता है, न बुद्धिसे, और न बहुत सुननेसे ही प्राप्त होता है। जिसको यह आत्मा 'स्वयं' ही 'वृणुते' यानी वरण कर लेता है, चुन लेता है—उसीको प्राप्त होता है और उसके सामने यह आत्मा अपने आपको 'विवृत' यानी पूरी तरहसे खोलकर रख देता है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः
तस्यैव आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

(मुण्डकोपनिषद् ३।२।३)

क्योंकि यह आत्मा सर्वत्र, सर्वदा और सबमें 'सम' रूपमें व्याप्त और चारों तरफसे 'खुला हुआ रहस्य' (Open Secret) है। इसलिये संसारकी ऊहापोहमें हमें इसकी बू भी नहीं मिलती। इसीलिये कबीर चिल्ला-चिल्लाकर बोलते हैं कि ***'जल बिच मीन पियासी, मोहि देखत आवे हाँसी।'***इसी आत्मारूपी दिव्यमणिको अपने हृदयमें पाकर कबीर मस्त होकर गा उठते हैं—***'हम न मरब, मरिहै संसारा।'*** अत: आत्मा क्या हमें एक पहेली-सी नहीं लगती? एक ऐसी पहेली, जिसको भगवान्के सिवाय कोई भी नहीं सुलझा सकता। गीतामें भगवान्ने इस पहेलीको सबके लिये सुलझाकर रख दिया है। इसीलिये '**कृष्णस्तु भगवान् स्वयं**' हैं।

ज्ञानी गीताके अन्दर अपनी आत्माको छुपाकर बैठ जाता है। लेकिन गीता आत्माको छुपानेके लिये नहीं बनायी गयी है, बल्कि आत्माको प्रकट करनेके लिये सुनायी गयी है। आत्मा प्रकट हुए बिना रह नहीं सकती; क्योंकि सत्य अनावृत (आवरणरहित) होता है। उसे कोई ढक नहीं सकता।

मनुष्य जब-जब अपनी आत्माको भूल जाता है, तब-तब उसकी आत्माको प्रकट करनेके लिये ही **(तदात्मानं सृजाम्यहम्)** ईश्वर इस संसारमें आता है। अन्यथा ईश्वरका इस संसारमें क्या काम? सब अपने-अपने कर्मोंका फल भोगते रहते हैं। संसार बनाया ही इसी युक्तिसे गया है कि सब इसमें मरते-पचते रहें और अपने-अपने कर्मोंका फल भोगते रहें।

गीताको हम ध्यानपूर्वक पढ़ें तो यह स्पष्ट अनुभूति होती है कि गीता हमें ही कुछ कह रही है। सिर्फ हमारे लिये ही प्रकट हुई है। हमारा सारा ध्यान आकर्षित करके हमें पूराका पूरा, जैसे भी हम हैं, हमें हमारे सारे दोषोंसहित अपना लेती है और अपने अन्त:कक्षमें ले जाकर हमारे मनके सामने एक ऐसा निर्मल दर्पण रख देती है, जिसमें हमारी आत्माका प्रतिबिम्ब हमें हूबहू दिख जाता है और हम स्वयं ही अपना मुँह छिपाकर भगवान्के चरणोंमें गिर जाते हैं। दयालु, निष्पाप भगवान् एक माताकी भाँति हमारे सारे कल्मष धोकर हमें गलेसे लगा लेते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

× × ×

लोहे की तरह काला और भारी था मन मेरा,
खींच लिया नटवर ने चुम्बक दिखाय के।
हृदय में आये हरि होने लगी बात,
रोने लगी मैं मुँह को छुपाय के॥
आँसुओं को पोंछ कर हँस कर बोले हरि,
सोना बना दूँ तुम्हें पारस छुआय के।
सोना में तो कछु खोट रहत हरि,
कुन्दन बन जाऊँ मैं चरण शरण पाय के॥

सत्यकथा—

शुभ वृत्तिका सुपरिणाम

(श्रीविमलेन्दुजी चटर्जी)

घटना पुरानी है। बंगालके दिनाजपुर जिलेके एक गाँवमें एक रामतनु नामक ब्राह्मण रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम प्रमिला था। एक पुत्र प्रद्योतकुमार था, जो कलकत्तेसे ग्रेजुएट होकर आया था और उसे अच्छी नौकरी मिलनेकी आशा थी। बगलके गाँवमें एक ब्राह्मण सद्गृहस्थ प्रमथनाथके एक बड़ी सुशीला कन्या थी। लड़केकी बी०ए० में सफलता सुनकर प्रमथनाथने चेष्टा करके अपनी कन्या शुभाका विवाह उससे कर दिया। रामतनुकी स्त्रीका स्वभाव बहुत ही उग्र था, साथ ही वह अत्यन्त कठोरहृदया थी। उसकी शैवालिनी नामकी एक लड़की भी माँके स्वभावकी थी और प्रद्योतमें भी माँकी प्रकृतिका ही अवतरण हुआ था। जबसे शुभा घरमें आयी, तभीसे शैवालिनी उसके विरुद्ध माँको लगाया करती, कहती 'यह बड़ी कुलक्षणी है, घरको बर्बाद कर देगी' और माँ अपने लड़के प्रद्योतका सदा कान भरा करती। बेचारी शुभाका बुरा हाल था, दिनभर उसे अपनेको तथा अपने सीधे-सादे माता-पिताको गालियाँ सुननी पड़तीं। घरका सारा काम तो गधेकी भाँति करना ही पड़ता। होते-होते सास, पति और ननद तीनों उसके लिये साक्षात् यमराजका रूप बन गये। वह बेचारी चुपचाप सब सहती रहती। स्वभाव बिगड़ जानेके कारण प्रद्योतकी कहीं नौकरी नहीं लगी। इससे वह और भी जला-भुना रहता। घरमें आपसमें भी उनके लड़ाई-झगड़े होते रहते। वृद्ध रामतनु बड़े भद्र पुरुष थे। वे चुपचाप सुनते रहते। मन-ही-मन परिवारकी दुर्दशापर दु:ख करते हुए भी अपना अधिक समय भजनमें लगाते। उनके पास कुछ पूँजी थी, उसीसे घरका काम चलता।

एक दिन माँ-बेटेमें लड़ाई हो गयी। पुत्र प्रद्योतने माँको भद्दी गालियाँ दीं और मारने दौड़ा। शुभासे नहीं रहा गया, उसने उठकर पतिके हाथ पकड़ लिये और कहा—'स्वामिन्! आपकी माता हैं, देवस्वरूपा हैं। इनका पूजन करना और इन्हें सुख पहुँचाना ही आपका धर्म है। तथा इसीसे सबका कल्याण है इत्यादि।'

शुभाकी यह हरकत देखकर प्रद्योत आग-बबूला हो गया और माँकी ओरसे हटकर पत्नीपर चढ़ आया, हाथ छुड़ाकर बड़े जोरोंसे दो-चार घूँसे लगाये और बोला—'चुड़ैल! तू हमारे बीचमें बोलनेवाली कौन? बड़ी ज्ञानवाली उपदेश देने आयी है। यह माँ राँड़ तेरी है कि मेरी है। मैं अपनी माँसे चाहे जैसा व्यवहार करूँगा, तुझे क्या मतलब!' शुभा बेचारी घूँसे खाकर चुपचाप अलग बैठ गयी।

इतनेमें ही तमककर प्रमिला (सास)-ने कहा—'बेटा! सच ही तो है। यह चुड़ैल हमलोगोंके बीचमें बोलनेवाली कौन होती है। इसकी माँ राँड़ और भड़ुए बापने इसे यही सिखाया होगा कि 'पतिको सीख दिया करो।' ऐसी औरतें बड़ी कुलच्छनी होती हैं। इनका तो घरमें रहना ही घरके लिये बर्बादीका कारण है। तुमने अच्छा किया जो इसकी मरम्मत कर दी। मेरे तो एक सहेली थी। उसकी बहू भी इसी चुड़ैलकी तरह ज्यादा बोलती थी। एक दिन उसने अपने बेटेको समझाया। बेटा बड़ा आज्ञाकारी और धर्मात्मा था! उसने पहले तो उसकी खूब मरम्मत की और इसपर भी जब नहीं मानी तो माँकी सलाहसे एक दिन बेटेने उसके सोते समय तमाम बदनपर मिट्टीका तेल छिड़क दिया और दियासलाई लगा दी। राँड़ तुरंत ही जलकर खाक हो गयी। हर्रे लगा न फिटकरी, कुछ ही दिनोंमें इन्द्रकी परी-सी नयी बहू आ गयी। बेटा! ऐसी औरतें इसी कामकी हैं।'

माँकी बात सुनकर बड़े उत्साहसे बेटी शैवालिनी भाईसे बोली—'हाँ-हाँ भैया! माँ ठीक कहती है। लातका देवता बातसे थोड़े ही मानता है।'

प्रद्योत और भी उत्तेजित हो गया। उसके क्रोधकी आगमें माँ तथा बहनके शब्दोंने मानो घृतकी आहुति डाल दी। उसने दौड़कर शुभाके सिरपर घूँसे मारे और कहा—'सुन लिया न, अब जरा भी चीं-चपड़ की तो माँका बताया उपाय ही किया जायगा। खबरदार!'

फिर तीनों बहुत बके-झके—बेचारी निरीह शुभा
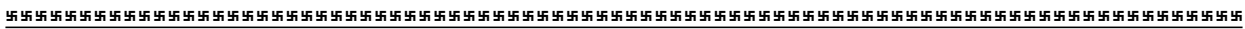
सुबक-सुबककर—चुपचाप रोती हुई सब सुनती रही और मिट्टीके तेलकी आगसे जल मरनेको तैयार होने लगी।

वृद्ध रामतनु सब सुन रहे थे, वे बड़े साधु-स्वभाव थे, पर आज उनसे नहीं रहा गया। इस कुत्सित अत्याचारको उनकी आत्मा सहन नहीं कर सकी। उन्होंने खड़े होकर बड़े जोरसे झिड़कते हुए अपनी पत्नी प्रमिलासे कहा—'चाण्डालिनी! तू मालूम होता है साक्षात् पिशाचिनी है। निरपराध बालिकापर, जो बेचारी देवकन्याके सदृश सर्वगुणसम्पन्न और सुशील है, तुमलोग इतना भयानक अत्याचार कर रहे हो। यह नीच प्रद्योत भी तुम्हारे साथ हो गया है। तुमलोग इसको तथा इसके साधु-स्वभाव माँ-बापको गालियाँ देकर बहुत बड़ा पाप कर रहे हो। इस छोकड़ी शैवालिनीकी भी बुद्धि मारी गयी। यह नहीं सोचती कि इसके ससुरालमें इसकी भी यही दुर्गति हो सकती है। तब माँ-बेटी दोनोंकी क्या दशा होगी। बेचारी लड़की सात्त्विक माता-पिताको छोड़कर तुम्हारे घर आयी है और तुम राक्षसकी तरह उसे खानेको दौड़ रहे हो और उसे जलाकर मारनेकी सोच रहे हो। धिक्कार है। याद रखना, गरीब दीनकी हायसे सर्वनाश हो जायगा।'

पतिकी बात सुनकर प्रमिला कड़ककर बोली—'बस, बस, रहने दो। तुम्हारी तो बुद्धि सठिया गयी है। तभी तो इस नीच जवान छोकड़ीकी हिमायत कर रहे हो। रखो न, इस देवकन्याको अपने पास। हम माँ-बेटे तो अपना काम चला लेंगे।'

अब तो रामतनुकी आत्मा तिलमिला उठी। बड़े साधुस्वभाव होनेपर भी उनके मुँहसे सहसा निकल गया—'चाण्डालिनी! जा, तेरे और तेरे इस दुष्टचरित्र राक्षस बेटेके शीघ्र ही गलित कुष्ठका रोग हो जायगा और तू दु:खदर्दसे कराहते-कराहते मरेगी। यह लड़की भी सुख नहीं पायेगी × × × ।'

रामतनु बोल ही रहे थे और न मालूम उनके मुँहसे क्या निकलनेको जा रहा था कि शुभाने दौड़कर उनके चरण पकड़ लिये और वह चीख मारकर गिर पड़ी। फिर चरण पकड़कर बोली—'पिताजी! पिताजी! आप क्या बोल रहे हैं। कुसूर तो मेरा है। मैं न बोलती तो इतना काण्ड क्यों होता। मेरे ये पतिदेव ही मेरे देवता हैं, मेरे भगवान् हैं। और ये माताजी, जो मेरे भगवान्‌की माँ हैं, मेरे लिये परम पूजनीय हैं। पिताजी! इन लोगोंका जरा भी कष्ट मैं सहन नहीं कर सकती। इनको गलित कुष्ठ होगा तो मैं कैसे जीऊँगी। मुझपर दया करो, क्षमा करो पिताजी! आप दयालु हैं ····।'

बहूकी बात काटकर प्रमिलाने चिल्लाकर कहा—'बड़ी शिफारिस करनेवाली आयी है। जान गयी मैं, यह बूढ़ा और तुम दोनों मिले हुए हो। हमलोगोंके पीछे लगे हो। पर चिड़ियाकी बींटसे कहीं भैंस मरती है। इसके शापसे हमारा क्या होगा। देखती हूँ, पहले तुमलोग मरते हो कि हमें कोढ़ होती है।'

शुभा कुछ नहीं बोली, वह ननदके लिये भी ससुरसे कुछ कृपाभिक्षा चाहती थी, पर अब बोल नहीं पायी। रोने लगी। रामतनु उठकर बाहर चले गये। उन्हें अपने क्रोधपर पश्चात्ताप था। तीनों माँ-बेटे-बहिन अलग एक कमरेमें चले गये।

× × ×

विधिका विधान, कुछ ही वर्षों बाद प्रमिला और प्रद्योतको गलित कुष्ठ हो गया और शैवालिनीका पति पागल होकर पागलखाने भेज दिया गया। अब प्रमिला और प्रद्योत दोनोंके पश्चात्तापका पार नहीं रहा। उधर शुभाकी दशा तो सबसे अधिक दयनीय हो गयी। वह रात-दिन रोती तथा सास-पति एवं ननदके दु:खमें अपनेको कारण मानकर महान् खेद करती हुई बार-बार भगवान्‌से कातर प्रार्थना करती—सास-पतिके रोगनाशके लिये और ननदोईकी स्वस्थताके लिये! दिन-रात सब घृणा छोड़कर वह तन-मनसे सास-पतिकी हर तरहकी सेवामें लगी रहती।

गाँवमें एक सिद्ध महात्मा रहते थे—श्रीकपिल भट्टाचार्य। एक दिन शुभा उनके स्थानपर जाकर चरणोंमें पड़कर रोने लगी तथा उनसे सब हाल सविस्तर कह सुनाया। महात्माका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने

कहा—'बेटी! तुम धन्य हो। इनके पाप तो बहुत प्रबल हैं। परंतु तुम्हारी सद्भावनासे तुम्हारे स्वामी शीघ्र ही रोगमुक्त हो जायँगे और तुम्हारे अत्यन्त अनुकूल होंगे। तुम्हारा जीवन सुखी होगा। उन्हें केवल चने खिलाओ, चावलमोगरेका तेल लगाओ और एक सिद्धौषधि देकर कहा कि यह खिलाओ। तीन महीनेमें रोगसे छुटकारा मिल जायगा। परंतु सास अच्छी नहीं होगी, उसका रोग बढ़ेगा और वह मर जायगी। पर तुम्हारी सद्भावनासे परलोकमें उसकी दुर्गति नहीं होगी। तुम्हारे ननदोईका पागलपन भी मिट जायगा। तुम्हारी सद्भावना तथा इन तीनोंके सच्चे पश्चात्तापसे ही भगवत्कृपासे यह फल होगा।' ·····पर यह याद रखना, तुम भी आगे चलकर सास बनोगी। कहीं ऐसा न हो कि सास बनकर बहूके प्रति दुर्भाव करने लगो। यद्यपि सब सास बुरी नहीं होतीं, तथापि सासमें वह मिठास नहीं होती, जो माँमें होती है। बहुत मीठी सास भी कुछ कड़ुवापन रखनेवाली ही पायी जाती है। होना चाहिये सासको अधिक मिठासवाली; क्योंकि उसे परायी बेटीको बेटी बनाकर उसपर स्नेह करना है। इसलिये बहूपर बेटीसे भी अधिक प्यार करना चाहिये। वह बेचारी अपने बापके घरको छोड़कर तुम्हारे यहाँ आती है, वह अपना दुःख भी किसीसे नहीं कह सकती और तुम यदि पिशाचिनीकी भाँति उसका खून चूसने लगती हो तो तुम्हारी दुर्गति कैसे नहीं होगी। याद रखना चाहिये, बहूको सतानेवाली सास नरकोंमें जाती है और उसे शूकरीकी योनि प्राप्त होती है। मैंने यह सभी सासमात्रके लिये कहा है। तुम कभी भी ऐसी नहीं हो सकती। तुम तो कौसल्या-सरीखी आदर्श सास होओगी। साथ ही पतियोंको भी याद रखना चाहिये, वे अपनी पत्नीको कभी गाली भी न दें, हाथ तो कभी उठायें ही नहीं। जो पति अपनी पत्नीको मारता है, वह अगले जन्ममें स्त्रीयोनिमें जाकर जवानीमें विधवा होता है।

कहना नहीं होगा कि कुछ ही दिनोंमें प्रद्योत रोगमुक्त हो गया। प्रमिला कष्ट भोगती हुई मर गयी; पर वह मरी पश्चात्तापकी आगमें जलती हुई तथा मुक्तकण्ठसे शुभाकी बड़ाई करती और उसे आशीर्वाद देती हुई। शैवालिनी भी पतिके स्वस्थ होनेसे सुखी हो गयी। तीनोंके बड़े पाप थे, पर शुभाकी परम शुभवृत्तिसे परिणाम मंगलमय हो गया। प्रद्योतकी बड़ी अच्छी नौकरी लग गयी और उन दोनोंका जीवन धन-सम्पत्ति-संतति-सम्मति आदिसे सर्वांग सुखपूर्ण हो गया।

मन एवं इन्द्रियोंसे सावधान!

(प्रो० श्रीशैलजानन्दजी झा 'अंगार', एम० ए०)

गीताके छठे अध्यायके छठे श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको लोक-कल्याणार्थ उपदेश देते हुए कहा है—

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

अर्थात् जिस व्यक्तिका मन सांसारिक विषयोंमें लिप्त हो, वह स्वयं अपना शत्रु है तथा जिसका मन विषयोंसे निर्लिप्त हो, वह स्वयं अपना मित्र है। दूसरे शब्दोंमें, विषय-वासनाओंमें लिप्त मन पतनोन्मुखी होकर मानवको दानवत्वके महाखड्डमें ढकेल देता है तथा दूसरी ओर, विषय-वासनाओंसे निर्लिप्त मन ऊर्ध्वमुखी होकर देवत्वका दुर्लभ द्वार खोल देता है।

फिर एक स्थलपर श्रीकृष्णने मानवके नित्य-सुखका रहस्योद्घाटन करते हुए कहा है—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

(५।२३)

अर्थात् जो इस पांचभौतिक शरीरके विनष्ट होनेके पूर्व ही काम एवं क्रोधसे उत्पन्न वेगको सहन करनेमें समर्थ हो जाता है, वही पुरुष सत्-चित्-आनन्दका भोक्ता है।

इतना स्पष्ट हो गया कि काम एवं क्रोधसे मुक्ति पानेमें ही सच्चा सुख है; किंतु चूँकि काम और क्रोधके-निवासस्थान मन एवं इन्द्रियाँ हैं, अतः इस परम

आनन्दोपलब्धिके लिये हमें मन एवं इन्द्रियोंका स्वामी बनना पड़ेगा और जो इनका दास है, वह सदा दुखी रहेगा।

एक भुक्तभोगी होनेके नाते मैंने उपर्युक्त श्लोकोंकी आवृत्ति की। कामके जादूकी छड़ीपर नाचनेवाला कौन मुझसे बढ़कर पतित और कामी होगा? भाई! लेकिन इसमें मेरा क्या दोष? काम तो ज्ञानको ही ढक देता है और फिर आगे कुछ सूझता ही नहीं। देखिये, यह अनन्त ज्योतिष्पिण्ड सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको उद्भासित कर रहा है; पृथ्वी निरवलम्ब गतिशील है; सम्पूर्ण भुवनका कण-कण उस वायुसे व्याप्त है, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये प्राण सँजोये रहता है; किंतु एक कामीके लिये उस अनश्वर चतुर चितेरेकी इस अनन्त लीलाका कोई मोल नहीं। उसे तो बस गोरे चामसे ढँका हुआ अस्थिपंजर ही एकमात्र सत्य भासता है। उस अन्धेको मदमाती आँखोंद्वारा छिपे हुए हड्डियोंके दो कोटर नहीं दीख सकते और न वक्ष:स्थलपर उभड़े हुए मांसके लोथ और खून ही दीख सकते हैं।

हाय राम! तुमसे बढ़कर हमें काम ही मधुर लगता है। हे प्रभो! हमारी क्या गति होगी? हे पिता! ज्ञान दो, मनश्चक्षु खोलो; हमारे शत्रुओंका दमन करो, नहीं तो मानव-जीवन निरर्थक ही चला जायगा।

मेरे जिज्ञासु पाठको! मानव-जीवन सुदुर्लभतर है। यही वह जीवन है, जिसे प्राप्तकर हम अपने सृष्टि-कर्ताको पानेकी इच्छा पूर्ण कर सकते हैं। किंतु इस शिव-संकल्पके पूर्व एक अटल विश्वास अपने मनमें जमा लेना होगा कि कामके राहगीरोंको प्रारम्भमें विष-दंशित, मृगतृष्णाके फूल मिलते हैं और फिर अन्ततक झाड़ीदार शूल और दूसरी ओर रामके पुजारियोंको प्रारम्भमें कण्टकाकीर्ण राहें मिलती हैं, शबनमसे भीगे, सुगन्धमय पुष्पोंसे सजे प्रशस्त पथ, जो सीधे मंजिलतक चले जाते है। किंतु इस मंगलमय साधन-पथपर केवल वे ही चल सकते हैं, जो मन एवं इन्द्रियोंके स्वामी हों। अवश्य ही मन एवं इन्द्रियोंका स्वामी बनना अत्यन्त ही कठिन है। अत: आप पूर्ण निष्ठाके साथ भगवान् श्रीकृष्णके उस वचनका सदा चिन्तन करते रहें कि इन्द्रियाँ बली हैं, किंतु मन इन्द्रियोंसे भी बली है; विशुद्ध बुद्धि मनसे भी अधिक शक्तिमती है और आत्मा तो सर्व शक्तिमान् है। भगवान् श्रीकृष्णका यह उपदेश है कि इन्द्रियाँ एवं मन विषयोन्मुखी हैं, किंतु विशुद्ध बुद्धि एवं आत्मा तो परमानन्दमें रहते हैं। स्पष्ट हो गया कि हमारे अन्दर चार शक्तियोंके दो समूह हैं, जो सदा परस्पर संघर्ष करते रहते हैं। अपेक्षाकृत दो लघु शक्तियाँ अर्थात् मन एवं इन्द्रियाँ विषयोंके दलदलमें फँसानेके लिये भरपूर शक्ति लगाती हैं तथा दूसरी ओर अपेक्षाकृत दो गुरु शक्तियाँ अर्थात् बुद्धि एवं आत्मा परमानन्दकी प्राप्तिके लिये सतत प्रयत्नशील हैं। चूँकि दो गुरु शक्तियाँ दो लघु शक्तियोंसे अधिक हैं, अत: अन्ततोगत्वा हमारी विजय निश्चित है। साधन-पथपर चलकर मंजिलतक पहुँचनेवाले जितने भी पथिक आजतक हुए उनमेंसे किसीने भी भगवत्कृपा तथा धैर्यका सम्बल नहीं छोड़ा और जिसने भगवत्कृपा एवं धैर्य छोड़ दिया, वह मंजिलतक नहीं पहुँच सका। किंतु यह विजय तुरंत नहीं प्राप्त होती। कारण, संग्राममें मन एवं इन्द्रियोंका केवल एक कार्य है—विषयोंमें रमना किंतु बुद्धि एवं आत्माके दो कार्य हैं—विशुद्धानन्दमें रमना तथा मन एवं इन्द्रियोंको विषयोंसे विरत कराके उन्हें भी विशुद्धानन्दमें रमाना। यही कारण है कि जय-पराजयका निर्णय तुरंत नहीं हो पाता और अधीर व्यक्ति अपनी विजयको नहीं देख पाता।

अब एकाध संतका दृष्टान्त लेकर उपर्युक्त कथनकी सत्यता आँकनी चाहिये। राम-कृष्ण-चरण-रतिके अभिलाषी तुलसी और सूरको भी कामने खूब पछाड़ा, मन तथा इन्द्रियोंने खूब घसीटा। सूर तो हठी मनके सामने रो-रो पड़े।

माधौ जू, मन हठ कठिन पर्‍यौ।
जद्यपि विद्यमान सब निरखत दुक्ख सरीर भर्‍यौ॥

किंतु सूरने धैर्य नहीं खोया और अन्तमें हठी मन सूरका गुलाम बन गया। अब तो वह कृष्ण-चरणको छोड़-कर कहीं हटता ही नहीं। सूर तंबूरेपर मस्त होकर गाते हैं—

मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसैं उड़ि जहाज कौं पच्छी फिरि जहाज पर आवै॥

जिहिं मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ, क्यों करील-फल भावै।
सूरदास-प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥

तुलसीदासजी रामकृपासे इन्द्रिय-मनके चक्करसे छूटकर कहते हैं—

अबलौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भवनिसा सिरानी, जागें फिरि न डसैहौं॥
पायेउँ नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहिं कसैहौं॥
परबस जानि हँस्यौ इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन मधुकर पनकै तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥

(विनय-पत्रिका, पद १०५)

अतः हे महत्त्वाकांक्षियो! तुम जैसे भी हो, वैसे मन तथा इन्द्रियोंको अवश्य साधो। चूँकि तुम्हारे शत्रु हठी हैं, इसलिये तुम इन्हें हठसे ही साध सकोगे। मन एवं इन्द्रियोंके सामने ज्ञान और तर्क वृथा हैं। ज्यों ही तुम्हारे शत्रु रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शके लिये आकुल हों, तुम तत्क्षण राम-नामकी छड़ी लेकर प्रचुर प्रहार करने लगो। देखोगे, विजय तुम्हारी है। प्यारे! गाँठ बाँध लो। जहाँ भी जाओ, जब भी जाओ, राम-नामकी छड़ी कभी नहीं भूलना। इस भोगलोकमें मन एवं इन्द्रियोंके लिये हर जगह चारे हैं। अतः हर क्षण सावधान रहो। आप सड़कपर चलते हो। हजारों युवतियाँ सेंट, क्रीमसे लिपी-पुती, जूड़ेमें फूल खोंसकर चलती हैं—'नासिकाको गन्ध मिलती है। वह आँखोंसे कहती है—'अरी! जरा रूप तो पी ले इस अप्सराका।'

खबरदार! यदि आँखें उठायीं आपने। राम-नामका जप प्रारम्भ कीजिये, फिर आप कहाँ हैं, रूपसी कहाँ है!

आप सड़कपर आगे बढ़ते हैं। किसीका कोकिल-स्वर कानोंसे टकराता है। मन आँखोंसे कहता है—'री! यह कौन स्वर्गकी परी है? आँखोंमें बिठा ले न इस जादूगरनीको?'

खबरदार! यदि आँखें उठायीं आपने।

भाई! अपने अज्ञानी एवं हठी मन तथा इन्द्रियोंको इसी प्रकार हठसे पराजित करना होगा। और कोई चारा नहीं। हाँ, आपके शत्रु केवल हठी ही नहीं, अज्ञानी भी हैं। आँखोंके अज्ञानके कारण ही तो परवाना शमापर जलकर मर जाता है। अज्ञानी परवाने! एक बार जलते हो तो फिर दूसरी बार क्यों जाते हो उसके निकट? मछली! तू भी रस-मोहके अज्ञानमें वृथा क्यों जान गँवाती है? और अज्ञानी मानव! तू! तू तो पाँचों इन्द्रियोंका दास है। अरे! अपने रामको छोड़कर परायी स्त्रीके हाड़से लिपटता है? छिः छिः! कभी मिला भी है कुछ? अभी भी हट जा रे, पामर!
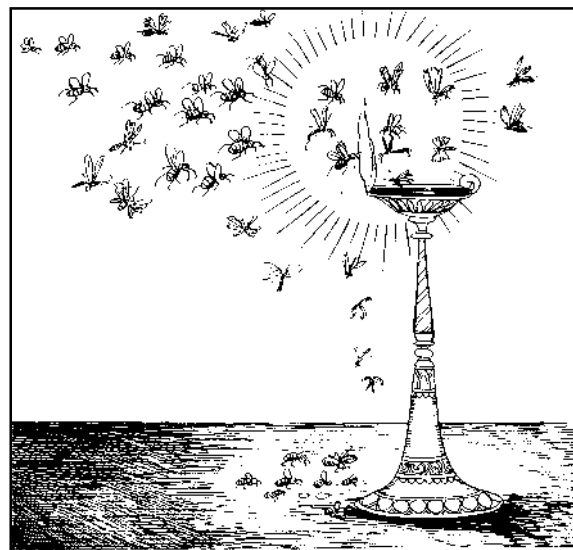
प्यारे! अपने विषयासक्त मन एवं इन्द्रियोंसे सतत सावधान रहें, आप इसपर राम-नामरूपी अस्त्रका प्रहार करते रहें। फिर तो आप भी तुलसीकी भाँति ही गा उठेंगे—

सियराम-सरूपु अगाध अनूप बिलोचन-मीननको जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख रामको नामु, हिएँ पुनि रामहिको थलु है॥
मति रामहि सों, गति रामहि सों, रति रामसों, रामहि को बलु है।
सबकी न कहै, तुलसीके मतें इतनो जग जीवनको फलु है॥

(कवितावली उत्तर० ३७)

अन्तमें हम सबोंको उस परमपिता परमेश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये कि 'जब तुम हमारे पिता हो तो अपने पुत्रसे जन्मभर ओझल ही मत रहना। मंजिल तो तुम्हारी बहुत दूर है—कोई बात नहीं; किंतु हे पिता! जब धैर्य टूटे तो धैर्य बँधा देना। और एक निहोरा पिता! जब जीवनके अन्तिम क्षणतक भी तुम्हारी मंजिलतक नहीं पहुँच सकूँ, तो जरा तुम ही चले आना न!'

जल—एक अद्भुत औषधि

(श्रीगोविन्दराम वासुदेवजी राठी)

बहुत-सी बीमारियाँ केवल सादा जल सही पद्धतिसे पीनेसे ठीक हो जाती हैं। आयुर्वेदमें इसे जलचिकित्सा कहा गया है। हमें देखना है कि यह प्रयोग किस प्रकार करनेसे शीघ्र तथा पूर्ण राहत मिलेगी। चर्चा करनेके पहले यह देखेंगे कि इस प्रयोगसे कौन-कौनसी बीमारियाँ ठीक होती हैं। इनमें सिरदर्द, रक्तचाप, पाण्डु, आमवात, अर्धांगवायु, चर्बी बढ़ना, सन्धिवात, नाककी हड्डी बढ़नेसे जुकाम रहना, नाड़ीकी धड़कन बढ़ना, दमा, खाँसी, पुरानी खाँसी, यकृत्के रोग, गैस, अम्लपित्त, अल्सर, मलावरोध, अन्न-नलिकामें अन्दरसे सूजन, गुदा बाहर आना, बवासीर, मधुमेह, आमातिसार, टी०बी०, पेशाबकी बीमारियाँ, कानकी बीमारियाँ, आँखोंकी बीमारी, खून आना तथा सूजन, गलेके विकार, गर्भाशयके विकार, अनियमित मासिक धर्म, श्वेत प्रदर, गर्भाशयका कैंसर, स्तनकी गाँठका कैंसर, मंदज्वर तथा अन्य छोटी-मोटी बीमारियाँ हैं।

उपर्युक्त बीमारियोंके लिये सादा जल ही लाभदायक है। प्राणीके शरीरको चलानेवाली मुख्य मशीन पेट ही है। जलको सही तरीकेसे पीनेसे पेटकी अँतड़ियाँ साफ होकर कार्यरत रहती हैं। इसलिये निम्न पद्धतिसे जल नियमित रूपसे पीनेसे अनेक बीमारियाँ स्वत: ठीक हो जाती हैं।

प्रात:काल उठते ही प्रतिदिन बिना भोजन किये केवल कुल्ला करके सवा लीटर (लगभग चार गिलास) जल एक साथ पीना चाहिये। जल पीनेके बाद मंजन आदि कर सकते हैं। इतना जल एक साथ न पिया जा सके तो पहले पेटभर पीकर ४ से ५ मिनट वहींपर चलकर शेष जल पी ले। बीमार एवं नाजुक स्वास्थ्यवाला व्यक्ति यदि एक साथ चार गिलास पानी न पी सके, तो पहले एक या दो गिलास पानीसे प्रयोग शुरू करे। धीरे-धीरे बढ़ाकर चार गिलासतक आ जाय। इसके बाद पूरा पानी नियमित रूपसे पीना जारी रखे। एक साथ इतना जल पीनेसे शरीरपर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता है। थोड़ी देरमें दो-तीन बार पेशाब अवश्य आयेगा, परंतु तीन-चार दिनके बाद नियमित हो जायगा।

जल ग्रहण करनेके बाद पैंतालिस मिनटतक कुछ भी सेवन न करें। यह जल वक्रीकृत, चिपकी तथा सुस्त आँतोंको साफकर सक्रिय करता है, जिससे आँतोंमें पड़े अन्न (खाया हुआ)-का सत्व आँतोंद्वारा शोधित होकर उसका खूनमें रूपान्तर होता है तथा नया खून शरीरमें संचालित होकर शरीरके घटकोंको दुरुस्तकर बलवान् बनाता है और शरीर रोगमुक्त होता है। भविष्यमें भी शरीर नीरोग बना रहता है।

यह तो हुई प्रात:कालीन जल-सेवन विधि। भोजन करते समय या भोजनके बाद कब, कैसे और कितना जल पीना चाहिये—इसकी चर्चा भी आवश्यक है, आइये, अब इसपर भी कुछ विचार किया जाय।

भोजनके दो घंटे बाद जल पीना चाहिये। बीचमें उसके पहले न पीयें। भोजनके समय जल पीनेकी ज्यादा आवश्यकता पड़े तो १०० मिली०तक ही पीना चाहिये। भोजनके बाद दो घंटेतक न रुक सकते हों तो एक घंटे बाद २०० मिली० जल ग्रहण किया जा सकता है। दो घंटेके बाद कितना भी जल पी सकते हैं।

खाये हुए पदार्थका पेस्ट बननेमें लगभग २ घंटेका समय लगता है। भोजनके समय गैस्ट्राइट नामक गैस भोजनको पचानेहेतु पैदा होती है। वह जलमें घुलनशील है। भोजनके तुरंत बाद जल पीनेसे गैस जलमें घुलनेसे अन्नका पाचन होनेमें कठिनाई होती है। ऐसी हालतमें कच्चा अन्न आँतोंमें जाकर सड़न पैदा करता है, जिससे अम्लपित्त होता है। अम्लपित्त ही रोगोंकी जड़ है। इसलिये भोजनके तुरंत बाद जल नहीं पीना चाहिये।

रात्रिके भोजनके बाद बिस्तरपर जाते समय जलके अलावा, कुछ भी सेवन न करें। सोनेके एक घंटे पहले खाना-पीना हो जाना चाहिये। दोनों समय भोजनके एक घंटा पहले भरपूर जल पीनेसे अग्नि प्रदीप्त होकर भूख बढ़िया लगती है। जल अशुद्ध हो तो उबले जलका ही प्रयोग करें। दिनभरमें कम-से-कम ६ लीटर जल तो पीना ही चाहिये। ज्यादा भी पी सकते हैं। शुरू-शुरूमें

४-५ दिन कठिनाई रहेगी, बादमें स्थिति सामान्य हो जायगी। रोगियोंपर इस प्रकार जलका उपयोग करनेपर अनुभव यह हुआ कि इस प्रयोगसे दो सालसे कोई बीमारी न आयी, बल्कि १० किलोग्राम वजन बढ़ गया। चर्बीवालोंकी चर्बी कम होकर सामान्य हो गयी। रोगी सर्दी, जुकाम, खाँसी और अजीर्णसे पीड़ित नहीं हुए।

कफ प्रकृतिवालेको ठंडा जल नहीं पीना चाहिये। वातके रोगीको यह प्रयोग प्रथम एक सप्ताहतक रोजाना तीन बार करना चाहिये। सुबह और शाम दोनों समय भोजनके एक घण्टा पहले इसके बाद रोजाना एक ही बार प्रयोग करें। वैसे हरेकको यह प्रयोग करनेसे पूर्ण लाभ मिलता है। यह प्रयोग जीवनभर करना हितकर है। सशक्त व्यक्तिके करनेसे आगे रोगी बननेकी उम्मीद नहीं रहती। मलावरोध, अम्लपित्त, अग्निमांद्य एक सप्ताहमें तथा ब्लड प्रेशर, मधुमेह रोगोंमें एक मासमें आराम हो जाता है। इस प्रयोगसे मनुष्य प्रफुल्लित और उत्साही बनता है। यह प्रयोग अमृत-स्वरूप है और एकदम सादा बिना खर्चेका तथा निर्दोष है। कमजोर व्यक्ति भी कर सकता है।

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषप्रदम्॥

चाणक्य-नीतिके अनुसार अजीर्ण होनेपर जल औषधि है। जीर्ण होनेपर जल बलप्रद है। भोजनके मध्य १०० मिली० जल अमृत है। भोजनके बाद तुरंत जलका सेवन करना विषतुल्य है।

अध्यात्म

(श्रीशम्भूनाथजी पाण्डेय)

जिससे मनुष्यके मनको शान्ति मिले, वही सच्चा अध्यात्म है। अध्यात्मका अर्थ है अपने भीतरके तत्त्वको जानना, मनन करना और दर्शन करना। अध्यात्म हमारी संस्कृतिकी परम्परागत विरासत है। भारतके सिद्ध-साधक सन्तों, ऋषि-मुनियोंके चिन्तनका निचोड़ है अध्यात्म। नैतिकता और पवित्र जीवन-मूल्य बने रहें और साथ ही यदि हम नकारात्मक विचारोंसे बचते रहें तो यही अध्यात्म है। 'अध्यात्म' एक छोटा शब्द है, लेकिन इसके पीछे जो भावना निहित है, वह अत्यन्त ही महान् और व्यापक है। जीवनमें शाश्वत मूल्योंकी रक्षा करना, राष्ट्रीय हितों एवं परोपकारके लिये सदैव तत्पर रहना ही अध्यात्म है।

अज्ञात परमतत्त्वकी खोज, स्वयंका परम बोध करना ही अध्यात्म है। स्थूलसे सूक्ष्मकी परिधिसे केन्द्रकी ओर बढ़ना ही अध्यात्म है। परमात्मा अध्यात्मको मनुष्यके मूलमें रखकर इस शरीरमें भेजता है। जीवनको सुचारु रूपसे चलानेकी वैज्ञानिक विधि भी अध्यात्म ही है। अध्यात्ममें गोता लगाकर मनुष्य नरसे नारायण बन सकता है। अपनी सोयी हुई इन्द्रियोंको जाग्रत् कर सकता है। जीवन जीनेकी कला भी मनुष्य अध्यात्मसे ही सीख सकता है। अध्यात्म मानव-जीवनके चरमोत्कर्षकी आधारशिला है। वस्तुतः यह मानवताका मेरुदण्ड है। अध्यात्म सीमाओंसे परे है। अध्यात्मके अभावमें मानव-जीवनमें सुखकी परिकल्पना नहीं की जा सकती है। मनुष्यताको बचाये रखनेके लिये, अनगिनत समस्याओंके समाधानके लिये अध्यात्म औषधि है। जीवनमें सफलताका मूल-मन्त्र जान पाना अध्यात्मके बिना असम्भव है। आध्यात्मिकताका समावेशकर हम अपने परिवार, समाज और राष्ट्रको उत्तरोत्तर उन्नतिके पथपर अग्रसर कर सकते हैं। अध्यात्म सुखसे ही जीवनमें सारे दुःखोंका अन्त सम्भव है। स्वयंका विवेचन, स्वयंके अन्तस्‌का अध्ययन ही अध्यात्म है।

आध्यात्मिकताके मार्गमें सही दिशा-निर्देशनका विशेष महत्त्व है। जिस प्रकारसे विज्ञानके छात्र गलत सम्मिश्रणोंका यदि प्रयोग करते हैं तो मिश्रण ही नष्ट हो जाता है या लेबोरेटरी ही प्रयोगके उपयुक्त नहीं रह जाती है। उसी प्रकार शरीररूपी प्रयोगशालाको अध्यात्मका निर्देशन सही तरीकेसे मिल सके, यह नितान्त आवश्यक है। अध्यात्म अनन्ततक पहुँचनेकी एक अन्तर्यात्रा है। [दैनिक जागरणसे साभार]

संकीर्तनसे रोगमुक्ति

(वैद्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)

आयुर्वेदीय साहित्यमें रोगोंका वर्गीकरण दो प्रकारसे किया गया है—दृष्टापचारज एवं अदृष्टापचारज। इस जन्ममें किये गये कर्मोंसे उत्पन्न रोग दृष्टापचारज तथा पूर्वजन्मकृत कर्मोंके कारण उत्पन्न रोग अदृष्टापचारज कहलाते हैं। इस प्रकार सभी सांसारिक सुख शुभकर्मोंके कारण तथा दुःख अशुभकर्मोंके कारण प्राप्त होते हैं। शरीर भी दो प्रकारके होते हैं—स्थूल शरीर एवं सूक्ष्म शरीर। सूक्ष्म या लिंग शरीर पूर्वजन्मकृत शुभाशुभ कर्मोंको पुनर्जन्म होनेपर स्थूल शरीरमें ला देते हैं तथा शुभाशुभ फलोंको भोगते हैं। पूर्वजन्मकृत कर्मोंको दैव या प्रारब्ध तथा इस जन्मके कर्मोंको पुरुषार्थ या प्रयत्न कहा जाता है। आयुर्वेदानुसार जन्मान्तरमें किये हुए पाप जीवोंको रोगके रूपमें पीड़ित करते हैं, उनका शमन औषध, दान, जप, देवार्चन (संकीर्तन) एवं हवनसे होता है—

जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते।
तच्छान्तिरौषधैर्दानैर्जपहोमसुरार्चनैः ॥

इस चिकित्साको 'दैवव्यपाश्रय' चिकित्सा कहा जाता है। इसमें दैवकी शान्ति एवं निराकरण-हेतु मणि, मन्त्र, जप, कीर्तन, हवन, मंगलकर्म एवं यम-नियमोंका प्रयोग किया जाता है। संकीर्तन शब्द देवोपासनासे सम्बन्धित विभिन्न क्रियाओंको निरूपित करता है। इसमें स्तुति, नामोच्चारण, गुणगान, जप, भजन, अर्चन, कथा, सूक्तपाठ, स्वस्तिवाचनादिका समावेश है। उपर्युक्त माध्यमसे किसी भी साधनसे किया गया ईश्वराराधन संकीर्तन कहलाता है। संकीर्तनसे स्वास्थ्यका उन्नयन तथा रोगका भी निराकरण होता है।

स्वस्थ व्यक्तिके स्वास्थ्यकी रक्षाके हेतु रसायन-चिकित्साका विधान है। शरीरकी रसादि धातुएँ जिससे उत्तम रूपमें बनती रहें, शरीर स्वस्थ रहे तथा अकाल, जरा एवं व्याधि जिस उपायसे दूर रहे, उसे रसायन कहते हैं। महर्षि चरकने रसायन-प्रकरणमें आचार-रसायनका निरूपण किया है। सदाचारके परिपालनसे व्यक्ति बिना औषधके ही रसायनके सभी गुण प्राप्त कर लेता है। आचार्यने आचार-रसायनमें जप, देवपूजन, अध्यात्म-चिन्तन तथा धर्मशास्त्रके पठनको विशेष स्थान प्रदान किया है। इस प्रकार देवार्चन या संकीर्तनसे दीर्घायु, स्मरणशक्ति, मेधा, आरोग्य, तरुणावस्था, कान्ति, वचनसिद्धि, नम्रता एवं शरीरमें उत्तम बलकी प्राप्ति होती है।

आयुर्वेद-वाङ्मयमें पद-पदपर देवोपासनाद्वारा रोग-मुक्ति प्रतिपादित की गयी है। चरकसंहिताकी टीकामें आचार्य चक्रपाणिदत्तने अधिकारपूर्वक उद्घोषित किया है कि अच्युत, अनन्त और गोविन्द-नामका उच्चारण सर्वरोगोंका विनाश करता है—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

वैद्यक ग्रन्थोंमें स्पष्ट आदेश है कि औषधको निश्चित प्रभावकारी एवं चमत्कारी बनाने-हेतु उसके संचय और निर्माण-कालमें निम्नांकित नामोंका कीर्तन करें—**अच्युतं चामृतं चैव जपेदौषधकर्मणि।**

यजुर्वेदमें सूक्तपाठ और ईश्वरोपासनासे मनोरोगोंके कारणभूत रज एवं तम दोषका निवारण उल्लिखित है। महर्षि आत्रेयके मतानुसार स्वस्तिवाचन और मन्त्रजपसे उन्माद तथा अपस्मार रोगकी निवृत्ति होती है। विषमज्वर (मलेरिया) दूर करने-हेतु शिव-पार्वतीकी पूजाको औषधस्वरूप निगदित किया गया है। चरकसंहितामें ज्वर-चिकित्साके प्रसंगमें विष्णुसहस्रनामके पाठको सर्वज्वरहर निरूपित किया गया है—

स्तुवन् नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति।

महर्षि सुश्रुतने ग्रहबाधामें नाम-जप तथा अपस्मारमें शिव-पूजनको रोगापहर्ता सिद्ध किया है। काश्यपसंहितामें शिशुओंको भूतावेशसे बचाने-हेतु विभिन्न जप करनेका आदेश दिया है। आचार्य वाग्भटने अपने ग्रन्थ 'अष्टाङ्ग-हृदय'में स्पष्ट किया है कि भगवान् शिव और गणेशकी आराधनासे कुष्ठरोग दूर होते हैं। वाग्भट भी अपने पूर्ववर्ती आचार्योंके इस मतसे सहमत थे कि कर्मज व्याधियोंका नाश जपसे होता है। वैद्य बंगसेनने जरारोग और अकालमृत्युके निवारणार्थ '**हरं गौरीं प्रपूजयेत्**'—ऐसा आदेश दिया है। नामसंकीर्तन-हेतु कतिपय स्थानोंपर

स्पष्ट रूपसे उपदेश दिया गया है—

युक्तोऽतिसारी स्मर तु प्रसह्य गोविन्दगोपालगदाधरेति।

'अतिसारग्रस्त रोगीको गोविन्द, गोपाल और गदाधर नामोंका स्मरण करना चाहिये।'

कुछ रोग जनपदोद्ध्वंस (महामारी)-के रूपमें फैलते हैं। फलतः असंख्य प्राणी कालके गालमें समाहित हो जाते हैं। महर्षि आत्रेयने उसका कारण वायु, जल, देश और कालकी विकृति बतलाया है। इन चारोंकी विकृतिको दूर करने-हेतु महर्षिने सत्कथा, देवार्चन तथा जपादिक सुकृत्योंको प्रशस्त कहा है। आयुर्वेदेतर सभी धार्मिक ग्रन्थोंमें भी संकीर्तनसे सर्वरोगोंका विनष्ट होना प्रतिपादित किया गया है। राधासहस्रनामका पठन हिचकी, वमन, मूत्ररोग, ज्वर, अतिसार और शूलका शमन करता है—

हिक्कारोगं तथा छर्दिं मूत्रकृच्छ्रं तथा ज्वरम्।
अतिसारं तथा शूलं शमयेत् पठनादपि॥

(रुद्रयामल)

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित गोपीगीतका पाठ हृदयसम्बन्धी रोगोंको दूर करता है—'**हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः।**' विषविकार दूर करनेमें विभिन्न मन्त्रोंका चमत्कारिक प्रभाव लोकसिद्ध है। गरुडध्वजके नामका कीर्तन तथा श्रवण सर्पदंश, वृश्चिकदंश, ज्वर और शिरोरोगका शमन करता है।

केशव तथा पुण्डरीकाक्ष नामोंका संकीर्तन नेत्ररोगोंको विनष्ट करता है—

केशवं पुण्डरीकाक्षमनिशं हि तथा जपेत्।
नेत्रबाधासु घोरासु..........................॥

धर्मप्राण भारतवर्षमें आदिकालसे ही संकीर्तनका अत्यधिक महत्त्व रहा है। नैत्यिक संकीर्तन मनोह्रास, अवसाद तथा विभाजित मानसिकताका निराकरण करनेमें औषधस्वरूप है। वर्तमान भौतिक जीवनके ऊहापोहमें संकीर्तनका प्रयोग मनोवैज्ञानिक चिकित्साका काम करता है। संकीर्तन सांसारिक दुःखोंकी निवृत्ति तथा सच्चिदानन्दकी प्राप्तिका अव्यर्थ साधन है। पाश्चात्य वैज्ञानिक निश्चित शब्दोंकी बार-बार कर्णेन्द्रियमें प्रविष्टि करके कुछ रोगोंका शमन करनेमें सक्षम सिद्ध हुए हैं। राम एवं कृष्ण शब्दोंका सतत उच्चारण विषाणुग्रस्त रक्तके निर्विषीकरणमें सहायक पाया गया है। भारतमें ही नहीं, विश्वके अनेक देशोंमें चल रही भगवन्नामसंकीर्तनकी लहर विभिन्न मानसिक और शारीरिक रोगोंको शान्त करनेमें सफल हुई है।

संकीर्तनके अलौकिक प्रभावसे दैहिक, दैविक और भौतिक संताप नष्ट होकर सुख,शान्ति तथा समृद्धिकी अभिवृद्धि होती है। बृहद्विष्णुपुराणमें इसी तथ्यको निम्नरूपमें अभिव्यक्त किया गया है—

सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम्।
शान्तिदं सर्वरिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम्॥

साधनामें बाधक घृणा

महात्मा आनन्दस्वामी सरस्वती उन दिनों लाहौरके दैनिक मिलापके सम्पादक थे। वह प्रायः कुछ दिनके लिये अज्ञातवासमें चले जाते थे तथा कुछ दिन साधनाकर लौट आते थे। एक बार वह कांगड़ाके वनोंमें जैसे ही साधनामें बैठे कि उन्हें लाहौरके एक ऐसे व्यक्तिकी याद आने लगी, जो इनसे दुश्मनी रखता था। महात्माजी भी उसके प्रति घृणाका भाव रखते थे। जब साधनामें उनका मन नहीं लगा, तो अन्तरात्माने जैसे चेतावनी दी, 'एक ओर तू आत्मशान्ति चाहता है, दूसरी ओर तेरे हृदयमें घृणा भरी है। जबतक हृदयमें घृणा रहेगी, शान्ति कदापि नहीं मिलेगी।' स्वामीजी तुरंत उठे, सामान समेटा और लाहौर जा पहुँचे। वह सीधे उस व्यक्तिके घर गये, जिससे उनकी शत्रुता थी। वह उन्हें सामने आया देखकर सकपका उठा। महात्माजीने अपने सिरकी पगड़ी उसके पैरोंमें रख दी तथा बोले, 'भइया, शत्रुताकी भावनाके कारण मेरा मन साधनामें नहीं लगता। मुझे क्षमा कर दो, तमाम गलतियाँ मेरी ही थीं। यह सुनते ही दोनोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। दोनोंने एक-दूसरेको गलेसे लगा लिया। शत्रुता तथा घृणा-जैसे आँसुओंमें बहकर काफूर हो गयी। दूसरे दिन वह पुनः साधनामें बैठे, तो समाधि लग गयी। राग-द्वेषसे रहित हृदयने अपूर्व शान्तिकी अनुभूति की।' ['अमर उजाला' आर्काइवसे]

द्वितीयाका बालचन्द्र

(श्रीयोगेन्द्रकुमारजी नागर)

परमपिता परमेश्वरद्वारा रचे गये इस अनन्त ब्रह्माण्डमें एक-से-एक अद्‌भुत आश्चर्य भरे पड़े हैं। अनेकानेक रहस्योंको अपने गर्भमें सँजोये हुए यह आकाश परमेश्वरीय अनन्तशक्तिकी एक झलक है। कभी किसी काली एवं निर्मेघ रात्रिमें यदि हम आकाशकी ओर देखें तो बस देखते ही रह जायँगे; क्योंकि चमचमाते हुए ग्रह, नक्षत्र, तारे हमारे मनको सहज ही आकृष्ट कर लेते हैं। यों तो इस आकाशमें एकसे बढ़कर एक पदार्थ हैं, पर इन सबसे कहीं अधिक सुन्दर हैं शुक्लपक्षकी द्वितीयाके बालचन्द्र; जो सूर्यास्तके कुछ समय-पूर्व ही दृष्टिगोचर होते हैं।

देवाधिदेव श्रीशिवके भाल (ललाट)-पर ये ही बालचन्द्र अत्यन्त शोभा बढ़ाते रहते हैं। ***'भाले बालविधुः'*** ***'सोह बालससि भाल', 'शीतांशु-शोभित-किरीट-विराजमान'*** आदि अनेक प्रकारोंसे इनका वर्णन किया गया है। शरीरका शीर्ष-भाग होनेसे मस्तकको श्रेष्ठ कहा गया है। जहाँ भगवान् शंकरने सर्पोंको आभूषण बनाया, व्याघ्रचर्मका परिधान धारण किया एवं गलेमें नर-कपालोंकी माला पहनी, वहीं इन द्वितीयाके बालचन्द्रको अपने मस्तकपर रखकर इन्हें श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया। अविनाशी परमात्मा जिस वस्तुको धारण करता है, वह भी परमात्माके सान्निध्यसे परमात्मस्वरूप बन जाती है। जैसे श्रीकृष्णकी बाँसुरीकी मधुर ध्वनिसे गोपियोंको परमानन्दकी प्राप्ति होती थी, उसी प्रकार इन दुर्लभ बालचन्द्रका दर्शनकर हम भगवान् शिवके दर्शनका लाभ उठा सकते हैं।

जो वस्तु दुर्लभ एवं मूल्यवान् होती है, वह कम दृष्टिगोचर होती है, जैसे मणि, माणिक्य, रत्न आदि। इसी प्रकार बालचन्द्रका दर्शन भी दुर्लभ है। केवल शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिके संध्या-समय पश्चिम दिशामें दृष्टिपात करनेसे सूर्यास्तके कुछ कालपूर्व ही हमें इनकी झलक मिल सकती है। देखनेमें अत्यन्त पतली गोल रेखाकी भाँति श्वेत, सुन्दर, स्वच्छ चन्द्रदेव हमारे मनको बरबस खींच लेते हैं। इन शिशु-शशिका दक्षिण भाग ऊपर एवं वाम भाग नीचे रहता है। दक्षिण भागकी ऊँचाई मानो यह संकेत देती है कि दाहिना भाग श्रेष्ठ है। वैदिक धर्ममें सारे देवकार्यको दाहिने हाथसे करनेका निर्देश दिया गया है। एक मासमें केवल एक बार ही श्रीचन्द्रदेव इस निश्चित काल एवं इस रूपमें हमें दर्शन देते हैं।

बालशशिका दर्शन शुभ माना जाता है। इससे अरिष्ट, रोग, कष्ट एवं पीड़ाएँ नष्ट होती हैं। शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न बालचन्द्रका स्वरूप चिन्ता, शोक एवं दरिद्रताको मिटानेमें सर्वथा समर्थ है। चन्द्रदेव सम्पत्तिके स्वामी हैं, ऐसा शिवपुराणमें कहा गया है। केवल हिन्दू-धर्म ही नहीं, अपितु मुस्लिम-धर्मने भी इन्हें अपनाया है। ईदका दिन इन चन्द्रदेवके दर्शन होनेपर ही निश्चित होता है। पूर्णिमाके चाँदको साधारणतया श्रेष्ठ माना जाता है, पर दुर्लभ नहीं; क्योंकि पूर्णचन्द्रकी अवधि रात्रिभर होती है, पर बालचन्द्रकी अल्पकाल ही।

'दूजका चाँद होना' प्रसिद्ध मुहावरा है। अनेक लोग अपने पुराने मित्रों एवं सम्बन्धियोंके अधिक काल-पश्चात् मिलनेपर इसका प्रयोग करते हैं। यह आम बात है कि अत्यन्त दुर्बल एवं कृशकाय लोग देखनेमें सुन्दर नहीं होते, 'पर दानी पुरुष एवं बालचन्द्र दुबलेपनसे ही शोभायमान होते हैं' ऐसा महान् नीतिकार श्रीभर्तृहरिजीका कथन है।

पर आजके इस संसारमें मानवीय बुद्धि भोग एवं संग्रहमें इतना व्यस्त है कि इन दुर्लभ देवके दर्शनसे अनभिज्ञ है। सर्वमानवोंको इनके दर्शनका लाभ उठाना चाहिये, इनके दर्शनसे मन उत्तरोत्तर शान्त और जीवन कल्याणकी ओर अग्रसर होता जाता है।

संत-चरित—

जीवन्मुक्त सन्त स्वामी श्रीनिगमानन्दजी महाराज

(ब्रह्मचारी श्रीगोपालचैतन्यदेवजी)
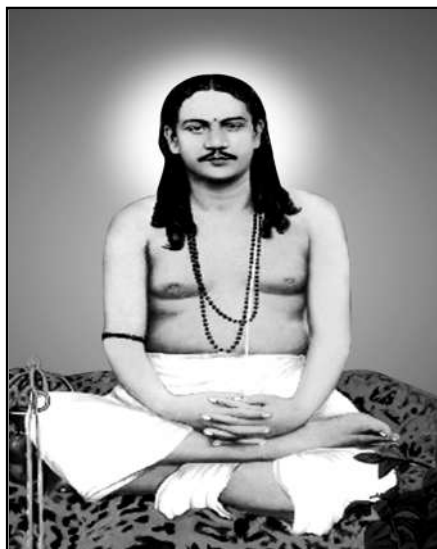
जीवन्मुक्त महात्मा निगमानन्दजी परम वन्दनीय आप्तकाम साधुपुरुषोंमें थे। नदिया जिलेके मैहरपुर सब-डिवीजनके अन्तर्गत कुतुबपुर नामक गाँवमें आपका जन्म संवत् १९३५ की श्रावण-झूलन-पूर्णिमाकी रातके दो बजे इस धराधाममें हुआ। पिताका नाम था भुवनमोहन भट्टाचार्य और माताका नाम माणिकसुन्दरी। पिता बड़े ही आस्तिक तथा श्रद्धालु व्यक्ति थे। वे स्वयं एक महान् योगी थे तथा योगी भास्करानन्द महाराजके कृपापात्र शिष्य थे।

स्वामी निगमानन्दजीका बचपनका नाम श्रीनलिनीकान्त भट्टाचार्य था। ये बचपनमें बड़े नास्तिक थे। जीवनका अन्त मृत्युमें ही मानते थे। परंतु कालका आघात बड़ा क्रूर होता है। आपकी आँखें खुलीं और धीरे-धीरे परलोक-जैसी कोई वस्तु है, ऐसा मानने लगे और फिर पुनर्जन्म और आत्माकी अमरता। इस परिवर्तनमें अन्तर्हित घटना बड़ी मर्मस्पर्शी है। आप एक बार नारायणपुर कैंपमें सेटलमेण्टके कामपर नियुक्त थे। अचानक देखा कि टेबुलके पास उनकी मृत स्त्री खड़ी है। बार-बार देखा, गौरसे देखा। मूर्ति अचल खड़ी है। मलिन मुख विषादपूर्ण आकृति!

अब तो चाट-सी लग गयी। परलोकतत्त्वकी तथा प्रेमतत्त्वके मर्मभरे रहस्योंके जाननेकी उत्कण्ठा जगी। इसीलिये आपने थियोसॉफ़िकल सोसायटीमें प्रवेश किया और कुछ ही दिनोंमें प्रेतात्माओंसे बातचीत करने लगे। ये अब मीडियमको हटाकर स्वयं रू-बरू मिलने तथा बात करनेको उत्सुक हुए। इसके लिये आप कलकत्ते लौट आये। यहाँ आपकी मुलाकात स्वामी पूर्णानन्दजीसे हुई। स्वामीजीके दर्शनके बाद आपकी सारी समस्याएँ हल हो गयीं। स्वामीजीने आपको बतलाया, 'तुम अपनी मृत स्त्रीसे मिलना चाहते हो। तुम्हारी स्त्री, प्रत्येक स्त्री उस आद्याशक्ति महामायाकी छायामात्र है। तुम छायाके पीछे जो साधना तथा शक्ति व्यय करोगे, उसी साधनासे तुम महामायाको प्राप्त कर सकोगे; तब देखोगे कि संसारमें सभी कुछ तुम्हारे लिये हस्तामलकवत् है।'

अब तो आपकी आन्तरिक आँखें खुलीं और सद्गुरु-लाभके लिये वे विशेष उत्कण्ठित हो गये। उत्कण्ठा इतनी बढ़ी कि एक दिन उन्होंने निश्चय कर लिया कि आज गुरुदेवके दर्शन नहीं हुए तो सूर्योदयके साथ ही अपने जीवनका अन्त कर डालूँगा। उसी रातको एक आश्चर्यजनक घटना हुई। रातमें एक महापुरुष इनकी तन्द्रावस्थामें प्रकट होकर बोले, 'वत्स! अपनी साधनाका मन्त्र लो। मन्त्रप्राप्तिके लिये व्याकुल हो गये हो। इसीसे हम मन्त्र देनेके लिये आये हैं।' आवाज सुनते ही आँख खुल गयी। मन्त्रके लिये हाथ बढ़ाया। उस महापुरुषके शरीरकी ज्योतिसे वह अँधेरा कमरा प्रकाशित हो गया था। महापुरुषने बिल्वपत्रपर लिखा हुआ मन्त्र इन्हें प्रदान किया। दीपक जलाकर देखनेसे मालूम हुआ कि बिल्वपत्रपर रक्तचन्दनसे 'एकाक्षरी' बीजमन्त्र लिखा हुआ है।

अब तो इस मन्त्रकी विधि और रहस्य जाननेकी व्याकुलता बढ़ी। वे वन-वन, पहाड़-पहाड़ और गाँव-गाँव दौड़े। निराश हो अनाहारसे आत्महत्या करनेकी ठानी। रातमें पुन: वही दिव्य मूर्ति प्रकट हुई और आपको यह आदेश मिला कि 'तारापीठके सिद्ध-योगी वामाक्षेपासे दीक्षा ग्रहण करो।' वामाक्षेपा अन्तर्यामी तान्त्रिकमतके कौलसिद्ध महापुरुष थे। उन्होंने स्वामी निगमानन्दको तारा माँका मन्त्र दिया और सर्वार्थसिद्धिका

आशीर्वाद देकर कहा कि तुम सफल होओगे। निगमानन्दजी केवल इक्कीस दिन उनके पास रहे। इसी बीचमें तन्त्रोक्त साधनाके लिये वामाक्षेपाने उन्हें शाक्ताभिषेक, पूर्णाभिषेक आदि कठोर साधनाके लिये उपयुक्त बना दिया तथा कृष्णा चतुर्दशी शनिवारके दिन श्मशानमें साधनाके लिये इन्हें बैठाकर माँका दर्शन करा दिया। इन सब साधनाओंकी बातोंका निगमानन्दजीने 'माताकी कृपा' तथा 'तान्त्रिक गुरु' नामक बंगला पुस्तकोंमें सविस्तर वर्णन किया है।

अनन्तर निगमानन्दजी सदा माँका दर्शन पाते रहे तथा उनसे वार्तालाप भी करते रहे। कई महीनेतक ऐसा चला, परंतु फिर भी आपके मनके संकल्प-विकल्प नष्ट नहीं हुए। अतएव आप पुन: श्रीगुरुदेवके चरणोंमें गये। गुरुदेवने संन्यास ग्रहण करनेकी आज्ञा दी। अब निगमानन्दजी संन्यासी गुरुकी खोजमें निकले। लगातार घूमते-घूमते वे पुष्करतीर्थ पहुँचे और वहाँ अकस्मात् एक महात्माके दर्शन हुए, जो ठीक वही थे, जिन्होंने स्वप्नमें उन्हें मन्त्र दिया था। 'मिल गया, मिल गया' चिल्लाते हुए ये उक्त महात्माके चरणोंमें जा गिरे। उस महात्माने इन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। निगमानन्दजीने इनके पास तीन वर्ष रहकर कठोर नैष्ठिक ब्रह्मचर्यकी साधना की। गुरुदेवने शास्त्रादिकी शिक्षा दी और तब जाकर संन्यासकी दीक्षा हुई। इन महात्माका नाम स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती परमहंसदेव था।

अब निगमानन्दजीको योग सीखनेकी लालसा हुई और योगी गुरुकी खोजमें निकले। खोजते-खोजते चीन पहुँचे, जहाँ इन्हें योगी गुरुके दर्शन हुए। इनका नाम था सुमेरदासजी। वहाँसे योगकी शिक्षा प्राप्तकर गुरुके आदेशानुसार आप बंगाल लौट आये। पबना जिलेके हरिपुर गाँवमें शारदाबाबू जमींदारके मन्दिरमें निगमानन्दजी बराबर बारह महीनेतक योगका अभ्यास करते रहे। विघ्न उपस्थित होते देख आप कामाख्या कामरूप पहुँचे और गौहाटीमें श्रीयज्ञेश्वर विश्वास महाशयके आग्रहसे उनके घर एकान्तमें रहकर समाधिका अभ्यास करने लगे। कई दिनोंतक समाधिमें पड़े रहते। एक रात चुपकेसे वे छिपकर कामाख्या पहाड़के श्रीश्रीभुवनेश्वरी देवीके मन्दिरके पीछे एक निर्जन स्थानपर कुल-कुण्डलिनीशक्तिको विधिवत् जगाकर समाधि—निर्विकल्प समाधिमें प्रवेश कर गये। उस समाधिका आपने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। आपने भिन्न-भिन्न ज्योतियोंके दर्शनकी बात लिखी है और फिर कहते हैं, 'साथ-ही-साथ अनुभव होने लगा कि एक-एक लोकका दरवाजा खुल रहा है। सब लोकोंको पार करता हुआ अन्तमें एक अखण्ड ज्योतिर्मय मण्डलमें जा पहुँचा। अनन्त ज्योतिमें अहंभावका प्रसार होनेसे मैं निर्विकल्प समाधिमें पहुँच गया। उस अवस्थाकी बात मैं कह नहीं सकता। उसी अवस्थामें उस प्रकाशके पुंजके भीतर मुझे मेरे 'मैं' के दर्शन हुए और 'मैं गुरु' यही स्फुरणा हुई। अचानक देखा कि घोर अन्धकारसे गुजर रहा हूँ, निकलनेका पथ नहीं है। धीरे-धीरे निर्गुणसे सगुण अवस्थामें अवतरित हुआ तथा सत्यलोक, तपलोक आदिसे उतरता हुआ अन्तमें भूलोकमें आ पहुँचा। धीरे-धीरे देश, फिर आसाम, फिर कामाख्या, फिर ब्रह्मपुत्र, फिर पहाड़के वनस्पति दीखने लगे। धीरे-धीरे वह भुवनेश्वरीदेवीका मन्दिर दीखा। बादमें अपनी स्थूल देहपर दृष्टि पड़ी और उसी समय मैं देहके भीतर घुस पड़ा। 'मैं गुरु हूँ' यह ज्ञान लेकर मेरा व्युत्थान हुआ। अन्तमें ये सर्वत्र सर्वावस्थामें ही अपनेको गुरुरूपसे अनुभव करने लगे तथा आपके मुखमण्डलपर एक अपूर्व ज्योतिका प्रकाश फैल गया।

अन्तमें ये स्वप्नमें मन्त्र देनेवाले गुरु स्वामी सच्चिदानन्द परमहंसदेवके दर्शनके लिये चल दिये। उज्जैनमें गुरुदेवके दर्शन हुए। वहीं आप 'परमहंस' पदको प्राप्त हुए। अब आपको प्रेमसाधनाके पदकी प्राप्ति वांछनीय प्रतीत हुई। इसके लिये आपने हिमालयमें जाकर माता गौरीका दर्शनलाभ किया।

इस प्रकार एक ही जीवनमें तान्त्रिक साधना, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, अष्टांगयोग तथा प्रेमयोगकी साधनामें सिद्धि प्राप्तकर परमज्ञानकी परम सीमापर पहुँचकर निगमानन्दजी सदाके लिये संसारमें अमर हो गये। आपके द्वारा प्रणीत ब्रह्मचर्यसाधन, योगी गुरु, ज्ञानी गुरु आदि ग्रन्थ समादरणीय हैं।

संवत् १९९२ वि० मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया शुक्रवारके दिन कलकत्ता नगरीमें आप ब्रह्मलीन हुए।

शरणागति

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

❀ शरणागतिकी व्याख्या नहीं हो सकती, शरणागतिका कोई एक ही प्रकार नहीं होता, अधिकारीके अनुसार शरणागतिमें भी भेद होता है।

❀ शरणागतिकी भूमि विश्वास है, जहाँ विश्वास होता है, साधक अपनी योग्यता और विश्वासके अनुरूप प्रभुकी महिमाको जैसी और जितनी समझता है, उसी ढंगसे वह प्रभुके शरण होता है। शरणागति तो साधकके हृदयकी पुकार है, वह सीखनेसे नहीं आती।

❀ जबतक मनुष्य अपने विवेक, गुण और आचरणोंद्वारा अपने दोषोंका नाश कर लेनेकी आशा रखता है, तबतक उसमें शरणागतिका भाव जाग्रत् नहीं होता। जब अपने प्राप्त विवेक और बलका प्रयोग करके भी साधक अपने दोषोंको मिटानेमें अपनेको असमर्थ पाता है, जब उसका सब प्रकारका अभिमान गल जाता है और वह अपनेको सर्वथा निर्बल समझ लेता है तथा भगवान्‌की महिमा इस प्रकार जान लेता है कि वे सर्वशक्तिमान्, सर्वगुणसम्पन्न, सर्वसुहृद्, परब्रह्म परमेश्वर, पतित-पावन और दीनवत्सल हैं; हरेक प्राणी, चाहे वह कितना ही पापी, कितना ही नीच क्यों न हो, उसको अपनानेके लिये, उससे प्यार करनेके लिये वे हर समय, हर जगह प्रस्तुत रहते हैं, एवं साथ ही यह सन्देहरहित विश्वास हो जाता है कि मैं जैसा भी हूँ, उनका हूँ, एकमात्र वे ही मेरे हैं; उनके अतिरिक्त मेरा और कोई नहीं है तथा जिसके हृदयमें उनके प्रेमकी लालसा है और जो उसकी पूर्तिसे निराश भी नहीं हुआ है, उस साधकमें शरणागतिका भाव जाग्रत् होता है।

❀ जब मनुष्यका यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि जिस शरीर, बुद्धि, मन आदिको मैं अपना समझता था एवं संसारके जिन व्यक्तियोंको, जिस सम्पत्ति और परिस्थितिको अपनाकर मैंने उनसे अपना सम्बन्ध जोड़ रखा है, वे कोई मेरे नहीं हैं तथा जब इस भावसे वह सब ओरसे निराश हो जाता है, तब उसका उन शरणागतवत्सल, सर्वसुहृद् भगवान्‌की ओर लक्ष्य जाता है और उनके शरणागत होनेकी लालसा प्रकट होती है। यह शरणागति ही जीवका अन्तिम पुरुषार्थ है।

❀ साधकको चाहिये कि भगवान्‌की महिमा और उनके सहज कृपालु स्वभावकी ओर देखकर अपने उत्साहमें कमी न आने दे, अपने लक्ष्यकी प्राप्तिसे कभी निराश न हो और भगवान्‌के शरण होकर सर्वथा उन्हींपर निर्भर हो जाय। अपनी निर्बलताको जानकर इस भावको सर्वथा मिटा दे कि मैं कुछ कर सकता हूँ या मुझे कुछ करना है।

❀ जब साधक प्रभुके शरण हो जाता है, तब उसका अहंभाव मिट जाता है; क्योंकि किसी प्रकारके बलका और गुणोंका अभिमान रहते हुए मनुष्य भगवान्‌के शरण नहीं हो पाता। शरणागत साधक कभी भी भगवान्‌से कुछ चाहता नहीं एवं यह भी नहीं समझता कि मेरा उनपर कोई अधिकार है। वह तो सब प्रकारसे विश्वासपूर्वक अपने-आपको उनके समर्पण कर देता है और उन्हींपर निर्भर रहता है।

❀ भगवान्‌की कृपासे, शरणागत भक्तोंका संग करनेसे और प्राप्त विवेकका आदर करनेसे शरणागत-भाव प्राप्त होता है। जब साधकका कोई उपाय न चले, अपनी निर्बलताका पूरा-पूरा अनुभव हो जाय, तब उसे भगवान्‌की शरण लेकर उनको पुकारना चाहिये। शरणागति अचूक शस्त्र है। इससे मनुष्यके समस्त दोष जलकर भस्म हो जाते हैं।

❀ जब भगवान्‌की असीम कृपासे शरणागतिका भाव उदय हो जाता है, उसके बाद साधकको कभी असफलताका दर्शन नहीं होता।

❀ मनुष्यको विचार करना चाहिये कि मुझे सबसे अधिक प्रिय क्या है? यदि उसे यह मालूम हो कि मेरा प्यार बहुत जगह बँटा हुआ है तो उसे समझना चाहिये कि अनेक जगह प्यार बँटा रहते हुए शरणागतिका भाव उत्पन्न नहीं होता। अतः साधकको चाहिये कि जिन अनित्य वस्तुओंसे सम्बन्ध जोड़कर वह उनसे प्यार करता है, उनसे प्रियता उठाकर एकत्र करे। एकमात्र उसीको अपना प्रिय समझे कि जिसके बिना वह किसी प्रकार भी चैनसे नहीं रह सके। ऐसे प्रिय एक प्रभु ही हो सकते हैं।

गो-चिन्तन—

गोरक्षापर श्रीजयप्रकाशनारायणजीके विचार

[लोकनायक जयप्रकाशनारायण स्वतन्त्रतासेनानी, राजनेता और समाजसेवी होनेके साथ-साथ गो-सेवक भी थे। उन्होंने जुलाई सन् १९५६ में बंग-गोरक्षा-परिषद्‌में गो-संरक्षण सम्बन्धी अपने विचार रखे थे। वर्तमानमें भी प्रासंगिक होनेके कारण उनके विचारोंको यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है—सम्पादक]

गोहत्यापर प्रतिबन्ध लगाने या गोरक्षा करनेके प्रश्नको आम तौरसे धार्मिक दृष्टिकोणसे उपस्थित किया जाता है। नतीजा यह होता है कि जो लोग इस विचारसे सहमत नहीं होते, वे इस प्रश्नको वर्तमान बुद्धिवादी युगके लिये संकीर्ण तथा अविचारणीय बताकर टाल देते हैं। मेरे ख्यालसे किसी भी सभ्यताकी दृष्टिसे यह उचित नहीं है कि धार्मिक भावनाओं तथा जनताकी रुचिको पूर्णत: अमान्य कर दिया जाय। यदि ये भावनाएँ गलत ढंगपर आधारित हैं तो शिक्षा और विवेकके द्वारा इनका सुधार किया जाना चाहिये, किंतु जबतक ऐसी भावनाएँ मौजूद हैं, तबतक अन्य धर्मावलम्बियोंद्वारा ही नहीं, बल्कि देशके कानूनके द्वारा भी इनका सम्मान होना चाहिये। धार्मिक भावनाओंके संघर्षसे समस्या जटिल हो सकती है, किंतु मेरा ख्याल है कि इस विशेष प्रश्नपर कोई भी धर्म अपनी सहमति नहीं देगा कि पूजा और धार्मिक समारोहके लिये गायकी हत्या होनी चाहिये। ऐसी परिस्थितिमें यदि कानूनद्वारा गोहत्यापर प्रतिबन्ध लगा ही दिया जाता है, तो इससे किसी भी धर्मके लोगोंकी धार्मिक भावना और विश्वासको किसी प्रकार आघात नहीं पहुँचना चाहिये।

× × ×

क्या यह कहा जा सकता है कि गोवधपर प्रतिबन्धसे किसी मानवीय मूल्यपर आघात पहुँचता है ? वस्तुत: स्थिति ठीक इसके विपरीत है, यानी गोवधपर प्रतिबन्ध स्वयं एक महान् मानवीय मूल्यका अनुमोदन है।

गायके सम्बन्धमें हिन्दुओंके विचार, मिथ्याविश्वास, अन्धविश्वास अथवा प्राचीन निषेधोंके परिणाम नहीं हैं। मानवीय भावना एवं मानव-संस्कृतिके क्रमिक विकासकी विधिसे होकर हमारे पूर्वज अहिंसाके उच्च विचारतक पहुँचे, जो सिर्फ मानव-जातिके लिये ही नहीं, बल्कि समस्त जीवोंके लिये लागू थी। सभी जीवोंके साथ क्रमिक तादात्म्य-स्थापनका यह महान् क्रम था। मेरी समझसे ऐसे पशुके रूपमें जिसे चोट नहीं पहुँचायी जानी चाहिये, गायका चुनाव मानवीय भावनाके विकास एवं सभी जीवोंके साथ आत्माके तादात्म्यका प्रतीक था। हमारे जीवनका यह उच्च दर्शन सर्वसाधारणके लिये उपयोगी होनेपर भी हमारे पतनकालमें सम्भव है कि अन्धविश्वास बन गया हो; पर कोई कारण नहीं कि प्रबुद्ध जन भी इस उच्च विचारको तिलांजलि दे दें।

इस मानवीय एवं नैतिक पहलूके अतिरिक्त गोसंरक्षणका आर्थिक पहलू भी खास एवं आवश्यक महत्त्व रखता है। यहाँ यह भी मैं पूर्ण विनम्रतापूर्वक कहूँगा कि हमारे देशका तथाकथित या आधुनिक जनमत छिछला है। गौ तथा गोवंश, उसका मल-मूत्र, उसकी मृत्युके उपरान्त उसका अवशिष्ट अंश हमारी कृषिप्रधान एवं ग्रामीण आर्थिक व्यवस्थाके अभिन्न अंगस्वरूप हैं।

जो मशीन एवं तथाकथित वैज्ञानिक तरीकोंसे खेतीका स्वप्न देखते हैं, वे पूर्णत: अवास्तविक संसारमें रहते हैं, जिसका इस देशकी परिस्थितियोंसे कोई ताल्लुक नहीं है। हमारी कृषि तथा ग्रामीण आर्थिक व्यवस्थाका भविष्य गाय और बैलपर मुख्यत: निर्भर है। इन आर्थिक पहलुओंके कारण गोसंरक्षण तथा पशुओंका नस्ल-सुधार सर्वोच्च कोटिके राष्ट्रीय दायित्वका रूप ग्रहण कर लेता है। अत: यह बड़े खेदकी बात है कि पश्चिम बंगालसरकार गोवधकी समस्याके प्रति इतनी उदासीन रही है। यह सत्य है कि गोरक्षण तथा पशुओंके नस्लसुधारका प्रश्न गोहत्यापर प्रतिबन्धसे ही प्रारम्भ और समाप्त नहीं होता। पर इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि गोवधपर प्रतिबन्ध सम्पूर्ण समस्याके समाधानके लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है और गोवधके इस मुख्य सवालको इस समस्यासे सम्बन्धित अन्य प्रश्न उठाकर टालना ठीक नहीं है।

मुझे लगता है कि भारतकी जैसी स्थिति है, उसमें गोवधपर प्रतिबन्धसे बढ़कर कोई अन्य चीज अधिक वैज्ञानिक एवं विवेकपूर्ण नहीं हो सकती।

सुभाषित-त्रिवेणी

दैवी एवं आसुरी प्रकृति
[Divine and demoniac Nature]

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥

[श्रीभगवान् बोले—] भयका सर्वथा अभाव, अन्तःकरणकी पूर्ण निर्मलता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति और सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, भगवान्, देवता और गुरुजनोंकी पूजा तथा अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्मोंका आचरण एवं वेद-शास्त्रोंका पठन-पाठन तथा भगवान्‌के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्मपालनके लिये कष्टसहन और शरीर तथा इन्द्रियोंके सहित अन्तःकरणकी सरलता।

Absolute fearlessness, perfect purity of mind, constant fixity in the Yoga of meditation for the sake of Selfrealization, and even so charity in its Sattvika form, control of the senses, worship of God and other deities as well as of one's elders including the performance of Agnihotra (pouring oblations into the sacred fire) and other sacred duties, study and teaching of the Vedas and other sacred books as well as the chanting of God's names and glories, suffering hardships for the discharge of one's sacred obligations and uprightness of mind as well as of the body and senses.

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥

मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट न देना, यथार्थ और प्रिय भाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना, कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरति अर्थात् चित्तकी चंचलताका अभाव, किसीकी भी निन्दादि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी उनमें आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरणमें लज्जा और व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव।

Non-violence in thought, word and deed, truthfulness and geniality of speech, absence of anger even on provocation, disclaiming doership in respect of actions, quietude or composure of mind, abstaining from slander, compassion towards all creatures, absence of attachment to the objects of senses even during their contact with the senses, mildness, a sense of shame in transgressing the scriptures or social conventions, and abstaining from frivolous pursuits.

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

तेज, क्षमा, धैर्य, बाहरकी शुद्धि एवं किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव—ये सब तो हे अर्जुन! दैवी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

Sublimity, forbearance, fortitude, external purity, bearing enmity to none and absence of self-esteem—these are the marks of him, who is born with the divine endowments, Arjuna.

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्॥

हे पार्थ! दम्भ, घमण्ड और अभिमान तथा क्रोध, कठोरता और अज्ञान भी—ये सब आसुरी सम्पदाको लेकर उत्पन्न हुए पुरुषके लक्षण हैं।

Hypocrisy, arrogance pride and anger, sternness and ignorance too—these are the marks of him, who is born with demoniac properties.

[श्रीमद्भगवद्गीता १६। १—४]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।५१ बजेतक	बुध	मूल सायं ५।२८ बजेतक	१५ जून	**मूल** सायं ५।२८ बजेतक, **मिथुन-संक्रान्ति** रात्रिमें ७।३ बजे।
द्वितीया ,, १२।२२ बजेतक	गुरु	पू०षा० दिनमें ३।४७ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।९ बजेसे, **मकरराशि** रात्रिमें ९।२४ बजेसे।
तृतीया ,, ९।५६ बजेतक	शुक्र	उ०षा० ,, २।१५ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।५६ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें १०।१ बजे।
चतुर्थी ,, ७।३८ बजेतक	शनि	श्रवण ,, १२।४३ बजेतक	१८ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें १२।५ बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १२।५ बजे।
पंचमी प्रात: ५।३२ बजेतक	रवि	धनिष्ठा ,, ११।२८ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।४३ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें २।१५ बजेतक	सोम	शतभिषा ,, १०।३४ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें २।५९ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिशेष ४।७ बजेसे।
अष्टमी ,, १।११ बजेतक	मंगल	पू०भा० ,, ९।५९ बजेतक	२१ ,,	**सायन कर्कका सूर्य** रात्रिमें ९।४६ बजे।
नवमी ,, १२।३६ बजेतक	बुध	उ०भा० ,, ९।४९ बजेतक	२२ ,,	**आर्द्राका सूर्य** रात्रिमें ७।३५ बजे, **मूल** रात्रिमें ९।४९ बजेसे।
दशमी ,, १२।३० बजेतक	गुरु	रेवती ,, १०।९ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।३३ बजेसे रात्रिमें १२।३० बजेतक, **मेषराशि** दिनमें १०।९ बजेसे, **पंचक समाप्त** दिनमें १०।९ बजे।
एकादशी ,, १२।५७ बजेतक	शुक्र	अश्वनी ,, १०।५८ बजेतक	२४ ,,	**योगिनी एकादशीव्रत (सबका), मूल** दिनमें १०।५८ बजेतक।
द्वादशी ,, १।५२ बजेतक	शनि	भरणी ,, १२।१९ बजेतक	२५ ,,	**वृषराशि** सायं ६।४६ बजेसे।
त्रयोदशी ,, ३।१४ बजेतक	रवि	कृत्तिका ,, २।६ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।१४ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिशेष ४।५७ बजेतक	सोम	रोहिणी ,, ४।१८ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ४।५ बजेतक।
अमावस्या अहोरात्र	मंगल	मृगशिरा सायं ६।४६ बजेतक	२८ ,,	**श्राद्धकी अमावस्या, मिथुनराशि** प्रात: ५।३२ बजेसे।
अमावस्या प्रात: ६।५४ बजेतक	बुध	आर्द्रा रात्रिमें ९।२३ बजेतक	२९ ,,	**अमावस्या।**

सं० २०७९, शक १९४४, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, आषाढ़-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ८।५५ बजेतक	गुरु	पुनर्वसु रात्रिमें ११।५८ बजेतक	३० जून	**कर्कराशि** सायं ५।१९ बजेसे।
द्वितीया ,, १०।५० बजेतक	शुक्र	पुष्य ,, २।२२ बजेतक	१ जुलाई	**श्रीजगदीश-रथयात्रा, मूल** रात्रिमें २।२२ बजेसे।
तृतीया ,, १२।२९ बजेतक	शनि	आश्लेषा रात्रिशेष ४।२७ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।८ बजेसे, **सिंहराशि** रात्रिशेष ४।२७ बजेसे।
चतुर्थी ,, १।४७ बजेतक	रवि	मघा अहोरात्र	३ ,,	**भद्रा** दिनमें १।४७ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, २।३८ बजेतक	सोम	मघा प्रात: ६।६ बजेतक	४ ,,	**मूल** प्रात: ६।६ बजेतक।
षष्ठी ,, २।५७ बजेतक	मंगल	पू०फा० दिनमें ७।१९ बजेतक	५ ,,	**कन्याराशि** दिनमें १।२८ बजेसे।
सप्तमी ,, २।४५ बजेतक	बुध	उ०फा० ,, ७।५९ बजेतक	६ ,,	**भद्रा** दिनमें २।४५ बजेसे रात्रिमें २।२५ बजेतक, **पुनर्वसुका सूर्य** रात्रिमें ९।१० बजे।
अष्टमी ,, २।५ बजेतक	गुरु	हस्त ,, ८।११ बजेतक	७ ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ८।२ बजेसे।
नवमी ,, १२।५६ बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, ७।५३ बजेतक	८ ,,	× × × ×
दशमी ,, ११।२३ बजेतक	शनि	स्वाती ,, ७।१२ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।२७ बजेसे, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें १२।२५ बजेसे।
एकादशी ,, ९।३१ बजेतक	रवि	विशाखा प्रात:६।१० बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ९।३१ बजेतक, **श्रीहरिशयनी एकादशीव्रत (सबका), मूल** रात्रिशेष ४।५१ बजेसे।
द्वादशी प्रात: ७।२३ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा रात्रिमें ३।२१ बजेतक	११ ,,	**धनुराशि** ३।२१ बजेसे, **सोमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें २।३५ बजेतक	मंगल	मूल ,, १।४३ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।३५ बजेसे, **मूल** रात्रिमें १।४३ बजेतक।
पूर्णिमा ,, १२।६ बजेतक	बुध	पू०षा० ,, १२।२ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** दिनमें १।२० बजेतक, **पूर्णिमा, गुरुपूर्णिमा।**

कृपानुभूति

शिवकृपासे अन्धकूपमें प्राणरक्षा

जरत सकल सुर बृंद बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस॥

(रा०च०मा० ४। मंगलाचरण सोरठा २)

यह विश्व कृपामूर्ति विश्वम्भरकी कौतुकमयी रचना है और इसके समस्त जीवसमुदायपर उनकी कृपा निरन्तर बरस रही है—यह एक अनुभवगम्य, किंतु त्रैकालिक सत्य है। जबसे मैंने होश सम्हाला है, तबसे लेकर आजतक विषम परिस्थितियोंमें परमात्माने मेरा बारम्बार परित्राण किया है। मैंने अपना आराध्य भवानी-शंकरको बचपनमें ही मान लिया था और जब-जब मैं निरुपाय हुआ, तब-तब उनकी कृपाने मेरा समुद्धार किया है—

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।

यहाँ अपने जीवनकी एक घटना प्रस्तुत करता हूँ, जिसमें मुझे भगवान्‌की कृपाका उत्कट अनुभव हुआ था।

यह घटना सन् १९८२ ई०की है। उस समय मेरी उम्र लगभग दस वर्ष रही होगी। मैं अपने मामाजीके पुत्रके यज्ञोपवीतके उपलक्ष्यमें अपने ननिहाल गया था। मेरा ननिहाल गंगातटके समीपवर्ती ग्राममें है। वहाँपर हम भाई-बहन एवं मामाके लड़के—सब मिलाकर पाँच-छ: बच्चे इकट्‌ठे हो गये थे। एक दिन हम लोगोंने निश्चय किया कि बिना किसीको बताये, गाँवसे कुछ दूरपर लगनेवाले बाजारमें घूमा जाय। हमलोग उछलते-कूदते बाजार जा पहुँचे। वहाँसे लौटते समय सबका विचार हुआ कि अलग-अलग रास्तोंसे हमलोग घर चलें और जो पहले पहुँचेगा, वह जीतेगा। मुझे सारे रास्ते ज्ञात न थे, फिर भी बचपनाके कारण मैं दौड़ पड़ा। मैं पहले पहुँचनेके प्रयासमें भटक गया और दौड़ता-दौड़ता एक खेतमें जा पहुँचा। वहाँ जमीनकी सतहसे लगा हुआ एक कुआँ था, जो सूखा एवं झाड़-झंखाड़से भरा था। वेगसे दौड़ता हुआ मैं सीधा कुएँके भीतर चला गया। वह लगभग बीस हाथ गहरा था।

कुएँमें गिरनेके बाद मेरी शारीरिक-मानसिक स्थिति कैसी थी, यह सोचकर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कुएँकी तलहटीमें गिरकर जब मैं किसी तरह उठा तो धूलसे सना एवं मकड़ीके जालेसे लिपटा हुआ कुछ दूसरा ही जान पड़ता था। धार्मिक संस्कारोंसे युक्त परिवारमें उत्पन्न होनेसे मुझमें भी भगवद्विश्वासके संस्कार थे। मैं मन-ही-मन अपने आराध्य भगवान् शंकरसे प्रार्थना कर रहा था—'हे शिवजी! मुझको कुएँसे बाहर निकालिये' और जोर-जोरसे रोता हुआ 'बचाओ-बचाओ' की पुकार भी लगा रहा था।

कुएँकी प्रतिध्वनि सुनकर कुछ बच्चोंने ऊपरसे झाँककर देखा और 'भूत-भूत' चिल्लाते हुए भाग गये। जब किसी बाहरी सहायताकी उम्मीद न बची तो भगवान् शंकरसे प्रार्थना करके मैं किसी प्रकार कुएँकी ईंटोंको पकड़कर ऊपर चढ़ने लगा और आधी दूरतक आ गया, पर एकाएक ईंट उखड़ गयी और मैं फिर कुएँमें जा गिरा। भगवान्‌के भरोसे फिर उठकर मैंने चढ़ना शुरू किया और धीरे-धीरे कुएँसे बाहर निकल आया। तत्पश्चात् थोड़ी देर वहीं लेटकर सुस्ताता रहा, फिर लोगोंसे घरका रास्ता पूछकर घर आ गया। घरमें सभी लोग खोज-खोजकर परेशान हो रहे थे—सारे गाँवमें मुझे ढूँढ़ा जा रहा था। जब मैंने सारी बात बतायी और यह बतानेपर कि मैं स्वयं ही कुएँसे बाहर निकला—किसीको भी विश्वास न हो सका; क्योंकि उतने गहरे कुएँसे निकल पाना तो किसी वयस्क व्यक्तिके लिये भी काफी मुश्किल था। मेरा विश्वास है कि उस दिन कुएँसे मेरा निकल पाना एकमात्र उन भगवान् शंकरकी ही कृपासे सम्भव हो सका, जिनके अनुग्रहसे मनुष्यका भवकूपसे भी उद्धार हो जाता है। **—ब्रजेश वाजपेयी 'गणेश'**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

कृतज्ञता

स्वनामधन्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी इतने उदार और दानवीर थे कि एक बार टिकटके लिये भी पैसे पास न रहे। जो पत्र आते थे, उनका उत्तर सादा लिफाफामें रखकर और पता लिखकर मेजपर रखते जाते थे। एक दिन एक मित्र मिलने आये तो वस्तुस्थिति ताड़ गये। नौकरको पाँच रुपयेका एक नोट दिया और टिकट मँगाये। मित्रने अपने हाथसे टिकट लगाये और नौकरद्वारा पोस्टऑफिस भिजवा दिये। उसके बाद जब वे मित्र आते थे—भारतेन्दुजी उनकी जेबमें पाँचका नोट जबरदस्ती डाल देते थे। एक दिन मित्रने कहा—'इसका मतलब यह है कि मैं आया ही न करूँ?' तब बाबूसाहबने हँसकर उत्तर दिया—'आपने ऐसे समयमें वह पाँचका नोट मुझे कर्ज दिया था कि यदि मैं रोजाना एक पाँचका नोट आपको दूँ तो भी सालभर बाद मेरी कृतज्ञता मुझसे कहेगी कि 'अब भी तुझपर उक्त मित्रका पाँच रुपया कर्ज बाकी है!'—**पारसनाथ सरस्वती**

(२)

बालककी ईमानदारी

हमारे देशका प्रत्येक बालक सच्चा और ईमानदार हो सकता है। एक पुरानी सत्य घटना है। झालरापाटनमें बालक जगमोहनप्रसाद माथुर अपने साथी बालकोंके सहित खेलता हुआ सड़क-सड़क आ रहा था। उसके आगे उज्जैनसे गयी हुई बरात श्रीलालचंदजी मोमियाके यहाँ बड़े ठाटबाटसे जा रही थी। सूर्यनारायण अस्ताचलको जा रहे थे। अचानक बालक जगमोहनकी दृष्टि सोनेके जड़ाऊ हारपर पड़ी, जो सड़कपर पड़ा हुआ था। तुरंत उसने उसे उठा लिया। अंदाज लगाया कि 'अभी हमारे आगे-आगे बरात गयी है—हो-न-हो, यह हार उन्हींका गिर गया है!' यह सोचकर, साथी बालकोंके मना करने और कई प्रकारके प्रलोभन देनेपर भी, बालक जगमोहन जल्दी-जल्दी लालचंदजीकी दूकानपर गया और जाकर उन्हें हार सौंपा। बरातकी धूम-धाममें बरातियोंमेंसे किसीको भी मालूम नहीं था कि हार गिर गया है। वास्तवमें वह दूल्हेके गलेमेंसे गिर गया था; परंतु स्वयं दूल्हेको भी ज्ञात नहीं हो पाया था। जब बालक जगमोहनने जाकर हार उनको दिया तो दूल्हेने अपने गलेकी ओर ध्यान दिया। हार नदारद था। बालककी ईमानदारी देखकर सब बराती बहुत प्रसन्न हुए और बच्चेको एक रुपया इनाम दिया। पुराने समयकी बात है, अत: उस समयका एक रुपया भी आजके हजार रुपयेके बराबर है। बालक इनाम पाकर प्रसन्न होता हुआ घर आया और इनामका एक रुपया घरवालोंको देकर सारा किस्सा उन्हें सुनाया। घरके सभी लोगोंने इनामके नामसे दिया हुआ रुपया स्वीकार करते हुए बालकको बहुत-बहुत शाबाशी दी और प्रेमके साथ उपदेश दिया कि 'सदा ऐसी ही ईमानदारी और सच्चाईसे रहना। परायी चीजको धूलके समान समझना।' वही बालक जगमोहन आगे चलकर एम०बी०बी०एस०की पढ़ाई कर डॉक्टर बना।

मैंने यह लघु घटना इसलिये लिखी है कि अन्य बालक भी सच्चे मानव बननेके हेतु इसका अनुसरण करें; और उनके माता-पिता तथा समस्त परिजन अपने बालकोंको भविष्यमें श्रेष्ठ मानव बनानेकी दृष्टिसे सदा ऐसी ही शिक्षाएँ देकर ईमानदारीका परिचय देते रहें।

—**कृष्णगोपाल माथुर**

(३)

बाबू टटकौड़ी घोषकी ईमानदारी

बाबू टटकौड़ी घोष मुर्शिदाबाद जिलेके एक जमींदारकी सेवामें एक बहुत छोटी जगहपर थे। वे बहुत ईमानदार और कर्तव्यशील थे। इन गुणोंके कारण अपने स्वामीकी नजरोंमें वे बहुत चढ़ गये थे। कुछ समय बाद जमींदार महाशय बीमार पड़े और कलकत्तेके एक अस्पतालमें उनका देहान्त हो गया। उनका लड़का उस जायदादका उत्तराधिकारी बना, परंतु वह बहुत छोटा था

और जायदादपर कर्ज बहुत था। इसलिये 'कोर्ट ऑफ वार्ड्स'ने जायदादको उस समयतक अपने प्रबन्धमें ले लेनेका निश्चय किया, जबतक लड़का बालिग न हो जाय। कलक्टरके हुक्मसे तहकीकात शुरू हुई कि मृत जमींदारने अपने पीछे कितनी सम्पत्ति छोड़ी थी और सारी चल-अचल सम्पत्तिका तख्मीना क्या है। एक अफसर वह तहकीकात करनेके लिये जमींदारके घरमें आकर ठहरा। उसके आनेका समाचार पाकर बाबू टटकौड़ी घोष उससे मिले। उन्होंने उसके सामने पचास हजार रुपयेके नोट, एक बहुमूल्य सोनेकी घड़ी और चैन रख दी और कहा कि 'इन चीजोंकी कोई चर्चा कहींपर कागजातमें नहीं है, न उन चीजोंके बारेमें जायदादका मैनेजर अथवा अन्य कोई घरेलू व्यक्ति ही जानता है। जमींदार साहबने वे चीजें गुप्तरूपसे उन्हें दी थीं और कहा था कि 'जब इनकी जरूरत होगी तब वह वापस ले लेंगे।'

कलक्टर साहब घोषबाबूकी यह ईमानदारी देखकर दंग रह गये। बाबू टटकौड़ी घोष जवान थे, बहुत थोड़े पढ़े-लिखे थे और गरीबीमें ही अपने दिन काटते थे। इतना बड़ा खजाना उनके लिये कम न था। वे यदि चुपचाप बिना किसीको खबर दिये उसे हजम कर जाते, तब भी उनकी ईमानदारीपर संदेह करनेका अवसर किसीको न मिल पाता। इतने बड़े प्रलोभनका त्याग देखकर कलक्टरने उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखा और उनके साथ बड़े सम्मानका व्यवहार किया। इसके बाद एक डिप्टी मैजिस्ट्रेटको जायदादका प्रबन्धक नियुक्त किया गया और उसने इसपर विशेष ध्यान दिया कि बाबू टटकौड़ी घोष अपनी नौकरीपर बने रहें। इसके बाद जब उसकी नियुक्ति अन्यत्र कहींपर हो गयी, तब उन्हींको जायदादका प्रबन्धक बनाया गया।

यद्यपि यह घटना कई दशक पुरानी है, पर बाबू टटकौड़ी घोषकी ईमानदारी, स्वामिभक्ति, कर्तव्यनिष्ठा आजके समयमें भी प्रासंगिक और पथ-प्रदर्शक है।

—बल्लभदास बिन्नानी, 'ब्रजेश'

(४)

प्राणिमात्रको मित्र माननेवाला निर्भय होता है

इस सृष्टिमें जो प्राणिमात्रको अपना मित्र, सखा-सहोदर मानता है, उसके लिये भयका कहीं और कोई स्थान ही नहीं रह जाता। गांधीजीके जीवनकी एक घटना है। चम्पारनकी बात है, वहाँ नीलका कारोबार करनेवाले गोरोंके अत्याचारोंसे लोग बड़े त्रस्त थे। गांधीजी वहाँ गये। उनके जाने और कुछ लोकोपयोगी कार्य करनेसे वहाँकी जनतामें बड़ी जागृति पैदा हुई। इससे गोरे बड़ी परेशानीमें पड़े। एक दिन किसीने गांधीजीसे कहा, 'बापू, यहाँका अमुक गोरा बड़ा दुष्ट है, वह आपको मार डालना चाहता है; उसने इस कामके लिये हत्यारे तैनात किये हैं।'

गांधीजीने साथीकी बात सुन ली। उसके बाद उन्होंने जो किया, उसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। एक दिन रातको जब कि चारों ओर निस्तब्धता व्याप्त थी, गांधीजी अकेले उस गोरेके बँगलेपर पहुँचे, उससे मिले और बोले, 'मैंने सुना है कि आपने मुझे मार डालनेके लिये हत्यारे नियुक्त किये हैं! उसकी आवश्यकता क्या थी; लीजिये, मैं बिना किसीसे कुछ कहे अकेला यहाँ आ गया हूँ।'

गोरा स्तम्भित रह गया, उसका सिर झुक गया।

—यशपाल जैन

(५)

एक निडर बालकका परोपकारी कार्य

घटना पुरानी है, अक्षयवर राय नामक छात्र गाजीपुर इंटर-कालेजमें पढ़ता था। वह ग्यारहवीं कक्षाका छात्र था। उसे प्रतिदिन अपने घरसे शहरमें पढ़नेके लिये आना पड़ता था। उसका घर शहरसे लगभग एक मीलकी दूरीपर था। उसे स्कूल आते समय रेलवे-लाइन पार करनी पड़ती थी। एक दिन वह पढ़नेके लिये घरसे शहरके लिये आ रहा था। जब वह रेलवे-लाइनके नजदीक पहुँचा तो उसकी निगाह स्वाभाविकरूपसे रेलवे-लाइनकी तरफ चली गयी। उसने देखा कि रेलवेकी लाइन खराब हो गयी

है, जिससे ट्रेन उलट सकती है और हजारों मनुष्य कालके गालमें जा सकते हैं।

रेलवे-लाइनके खराब होनेके विषयमें सोच ही रहा था कि देखता है कि पैसेंजर ट्रेन आ रही है। वह तत्काल अपने शरीरसे कमीज निकालकर खतरेकी सम्भावनाका निर्देश करने लगा। ट्रेन-ड्राइवरने उसे ऐसा न करनेके लिये सीटीद्वारा चेतावनी दी; लेकिन भारतमाँका यह लाड़ला सपूत, हिमालयकी भाँति अपने कर्तव्य-पथपर अचल रहा। उस समय उसके मस्तिष्कमें परोपकारके सिवा कोई वस्तु दिखायी नहीं पड़ रही थी। लाचार होकर ड्राइवरको ट्रेन रोक देनी पड़ी। ट्रेन उससे थोड़ी दूरपर जा रुकी। ड्राइवर, गार्ड—दोनों व्यक्ति आवेशमें आकर उसके पास पहुँचे। वहाँ जानेपर उन्होंने देखा कि रेलवेकी लाइन खराब हो गयी है। यदि छात्रने ऐसा करके ट्रेनको रोक न दिया होता तो हजारोंकी जानें चली जातीं। ड्राइवर और गार्ड अपने उस कार्यके लिये बड़े लज्जित हुए और उससे क्षमा माँगी।

धन्य है वह छात्र, जिसने अपने आपको मौतके मुँहमें ढकेलकर हजारोंकी जानें बचायीं।

—सत्यनारायण चतुर्वेदी

(६)

संकटमें भगवत्स्मरण

जैसे ही मेरी कोरोनाकी रिपोर्ट पॉजिटिव आयी मुझे घरके एक कमरेमें आइसोलेट कर दिया गया। मैं एकदम उदास एवं निराश हो गयी। मैं अकेली बिना पानीके घायल मछलीकी जैसे तड़पने लगी। शारीरिक पीड़ाके साथ-साथ मानसिक तनाव भी बढ़ गया।

मैंने हाथ जोड़कर भगवान्‌का स्मरण किया और कहा—'प्रभु! मुझे किस अपराधकी सजा दे रहे हो?' प्रभुकी कृपासे उसी समय मुझे श्रीरामचन्द्रजीके चौदह वर्षका वनवास याद आ गया, जिसने मेरे लिये एक आदर्श बनकर मुझे अपनी बीमारीसे लड़नेका हौसला दिया। मैंने महसूस किया कि मुझे तो सिर्फ चौदह दिनका एकान्तवास हुआ है, वह भी घरमें; परंतु रामजी जो कि सर्वसमर्थ अयोध्याके राजकुमार थे, उनको तो चौदह वर्षका वनवास हुआ था। उन्हें तो लेशमात्र भी दु:ख नहीं हुआ, बल्कि प्रसन्नता-पूर्वक वनवास स्वीकार कर लिया और इतनी कठिन विपत्तियोंमें भी विचलित नहीं हुए। अपने चेहरेकी मुस्कानको भी उन्होंने सदैव बनाये रखा तथा सुखका अनुभव किया।

उनकी प्रसन्नता और धैर्यने मेरे हौसलेको बुलन्द किया। सीतारामजी तथा लक्ष्मणजीकी छविको हृदयमें धारणकर मैं अपना एकान्तवास सकारात्मकता, हिम्मत एवं धैर्यके साथ व्यतीत करने लगी। ये महसूस करने लगी कि बेकारकी बातें एवं अपनी पीड़ाको सोचनेकी बजाय चौदह दिनके एकान्तवासका लाभ प्राप्त करूँगी। मैं ज्ञानवर्धक और सकारात्मक पुस्तकें, कहानियाँ आदि पढ़ने-लिखने लगी। इस प्रकार मुझे चिन्तन-मनन करनेका सुनहरा मौका मिल गया।

शुरूमें जो मेरी तबीयत बहुत ज्यादा खराब थी, धीरे-धीरे उसमें भी सुधार होने लगा। जैसे रामजीने अपने वनवास-कालमें राक्षसोंको मारकर साधुओंकी रक्षा की एवं धर्मकी पुन: स्थापना की, वैसे ही मैंने भी अपने नकारात्मक विचारोंको समाप्तकर सकारात्मक विचारोंको अपनाया और अपने कोरोना संक्रमणको हराया।

रामजीके चौदह वर्षके वनवास और त्यागके स्मरणने मेरे हौंसलेको बढ़ाया और मुझे कोरोना-जैसी महामारीसे निबटनेकी हिम्मत प्रदान की। श्रेष्ठ लोगोंके विचार आदमीको श्रेष्ठताकी ओर बढ़ाते हैं। श्रेष्ठ गुणोंका चिन्तन, श्रेष्ठ संकल्प व्यक्तिको सफलताकी ओर बढ़ाता है।

अपने अन्त:करणकी भावनाओंके माध्यमसे मैं यही कहना चाहूँगी कि कठिन परिस्थितियोंमें भगवान्‌पर श्रद्धा और विश्वास बढ़ानेवाली भगवल्लीलाके स्मरण एवं उनके आदर्शोंको अपनाकर विपत्तिमें भी अपना जीवन सुधारा जा सकता है। —हेमलता गोयल

मनन करने योग्य

दूसरोंका अमंगल चाहनेमें अपना अमंगल पहले होता है

'देवराज इन्द्र तथा देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार करके महर्षि दधीचिने देह-त्याग किया। उनकी अस्थियाँ लेकर विश्वकर्माने वज्र बनाया। उसी वज्रसे अजेयप्राय वृत्रासुरको इन्द्रने मारा और स्वर्गपर पुन: अधिकार किया।' ये सब बातें आश्रमके वृक्षोंसे बालक पिप्पलादने सुनीं। अपने पिता दधीचिके घातक देवताओंपर उन्हें बड़ा क्रोध आया। 'स्वार्थवश ये देवता मेरे तपस्वी पितासे उनकी हड्डियाँ माँगनेमें भी लज्जित नहीं हुए!' पिप्पलादने सभी देवताओंको नष्ट कर देनेका संकल्प करके तपस्या प्रारम्भ कर दी।

पवित्र नदी गौतमीके किनारे बैठकर तपस्या करते हुए पिप्पलादको दीर्घकाल बीत गया। अन्तमें भगवान् शंकर प्रसन्न हुए। उन्होंने पिप्पलादको दर्शन देकर कहा—'बेटा! वर माँगो।'

पिप्पलाद बोले—'प्रलयंकर प्रभु! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपना तृतीय नेत्र खोलें और स्वार्थी देवताओंको भस्म कर दें।'

भगवान् आशुतोषने समझाया—'पुत्र! मेरे रुद्ररूपका तेज तुम सहन नहीं कर सकते थे, इसीलिये मैं तुम्हारे सम्मुख सौम्य रूपमें प्रकट हुआ। मेरे तृतीय नेत्रके तेजका आह्वान मत करो। उससे सम्पूर्ण विश्व भस्म हो जायगा।'

पिप्पलादने कहा—'प्रभो! देवताओं और उनके द्वारा संचालित इस विश्वपर मुझे तनिक भी मोह नहीं। आप देवताओंको भस्म कर दें, भले विश्व भी उनके साथ भस्म हो जाय।'

परमोदार मंगलमय आशुतोष हँसे। उन्होंने कहा—'तुम्हें एक अवसर और मिल रहा है। तुम अपने अन्त:करणमें मेरे रुद्ररूपका दर्शन करो।'

पिप्पलादने हृदयमें कपालमाली, विरूपाक्ष, त्रिलोचन, अहिभूषण भगवान् रुद्रका दर्शन किया। उस ज्वालामय प्रचण्ड स्वरूपके हृदयमें प्रादुर्भाव होते ही पिप्पलादको लगा कि उनका रोम-रोम भस्म हुआ जा रहा है। उनका पूरा शरीर थर-थर काँपने लगा। उन्हें लगा कि वे कुछ ही क्षणोंमें चेतनाहीन हो जायँगे। आर्तस्वरमें उन्होंने फिर भगवान् शंकरको पुकारा। हृदयकी प्रचण्ड मूर्ति अदृश्य हो गयी। शशांकशेखर प्रभु मुसकराते सम्मुख खड़े थे।

'मैंने देवताओंको भस्म करनेकी प्रार्थना की थी, आपने मुझे ही भस्म करना प्रारम्भ किया।' पिप्पलाद उलाहनेके स्वरमें बोले।

शंकरजीने स्नेहपूर्वक समझाया—'विनाश किसी एक स्थलसे ही प्रारम्भ होकर व्यापक बनता है और सदा वह वहींसे प्रारम्भ होता है, जहाँ उसका आह्वान किया गया हो। तुम्हारे हाथके देवता इन्द्र हैं, नेत्रके सूर्य, नासिकाके अश्विनीकुमार, मनके चन्द्रमा। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय तथा अंगके अधिदेवता हैं। उन अधिदेवताओंको नष्ट करनेसे शरीर कैसे रहेगा? बेटा! इसे समझो कि दूसरोंका अमंगल चाहनेपर पहले स्वयं अपना अमंगल होता है। तुम्हारे पिता महर्षि दधीचिने दूसरोंके कल्याणके लिये अपनी हड्डियाँतक दे दीं। उनके त्यागने उन्हें अमर कर दिया। वे दिव्यधाममें अनन्त कालतक निवास करेंगे। तुम उनके पुत्र हो। तुम्हें अपने पिताके गौरवके अनुरूप सबके मंगलका चिन्तन करना चाहिये।'

पिप्पलादने भगवान् विश्वनाथके चरणोंमें मस्तक झुका दिया। [ब्रह्मपुराण]

कल्याणके आगामी ९७वें वर्ष (सन् २०२३ ई०) का विशेषाङ्क

'दैवीसम्पदा-अङ्क'

सनातन शास्त्रोंमें 'नेति-नेति' अथवा 'यत्किंचित्' आदि पदोंके द्वारा जिस परब्रह्म परमात्माका बोध कराया गया है, वही सर्वव्यापक नारायण जगत्के सृष्टि-पालन और तिरोधानके लिये तथा सदाचारी पुरुषोंका संरक्षण करनेके लिये अपने सर्वगुणसम्पन्नत्वको प्रकटकर नैर्घृण्य एवं वैषम्यादि दोषोंसे तटस्थ होकर और समस्त सात्त्विक गुणोंके आदर्शसे सम्पृक्त होकर अपनी मायाशक्ति एवं कृपाशक्तिके साथ जगत्में किसी एक देश-विशेषमें अवतरित होता है। उसीको भक्त भगवान्, उपासक उपास्य, साधक साध्य, आराधक आराध्य, पूजक पूज्य, ज्ञाता ज्ञेय, ध्याता ध्येय, जीव परमात्मा तथा सामान्य मानव अपने अभीष्ट देवके रूपमें जानता है, मानता है, समझता है और फिर उसीका वन्दन करता है, उसकी आराधना करता है, उसकी उपासना करता है, उसीको पानेकी चेष्टा करता है, उसकी सन्निधि प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखता है और फिर सदा ही उसके धाममें आनन्दनिमग्न होनेकी आकांक्षा करता है। यही आकांक्षा, यही अभिलाषा, यही उत्कट इच्छा, यही कामना और यही संकल्प ही दैवीसम्पदासे समन्वित होनेकी सद्भावना है, सोपान-परम्परा है।

मनुष्यसे मानव बननेकी, असुरसे देव बननेकी, जीवसे ईश्वर बननेकी तथा नरसे नारायण बननेकी आकांक्षा और फिर तदनुरूप व्यवहार एवं आचरणकी प्रतिष्ठा ही दैवीसम्पदाको आत्मसात् करना है। शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो आसुरी-सम्पदाको अपनाना चाहता हो। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है; वह सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंका पृथक्-पृथक् आश्रय ग्रहणकर अपने पृथक्-पृथक् कार्य करती है। सत्त्व-गुण प्रकाश, ज्ञान, सद्भाव, सत्य, अहिंसा, परोपकार, भलाई, न्याय, दया, दान, तप, शम-दम, तितिक्षा, वैराग्य, अनासक्ति, अपरिग्रह और आस्तिकता आदि गुणोंको प्रकट करता है। यही सात्त्विक गुणावली दैवीसम्पदाकी अवबोधिका है। इसके ठीक विपरीत तमोगुणसे परिव्याप्त आसुरी-सम्पदा अज्ञान, अन्धकार, आसुरभाव, असत्य, हिंसा, दम्भ, मद, मान, अभिमान, कृतघ्नता, बुराई, अन्याय, क्रूरता, पिशुनता, भोगासक्ति, उच्छ्रंखलता एवं नास्तिकता आदि असद् गुणोंको दर्शाती है। गीतामें भगवान्का वचन है—'**दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता**' अर्थात् दैवीसम्पदाको आत्मसात्कर तदनुसार जीवनचर्या और दैनिकचर्या बनानेसे जीव इस संसारको जन्म-मरणादि-बन्धनसे, दैहिक-दैविक-भौतिक तापोंसे और कर्मोंके बन्धनसे सदाके लिये मुक्त हो जाता है। ठीक इसके विपरीत आसुरी-सम्पदाको अपनाकर जीव सदाके लिये भवसागरमें निमग्न हो जाता है तथा भव-बन्धनमें जकड़ा रहता है। सदा ही दुःख एवं शोकमें पड़ा रहकर वह पश्चात्तापकी अग्निमें दहकता रहता है। भोगासक्तिके दुःखदायी क्षणिक सुखको ही वह परम सुख मान बैठता है। शास्त्रोंने श्रेयमार्ग और प्रेयमार्ग—ये दो मार्ग जीवके समक्ष प्रदर्शित किये हैं, इनमेंसे श्रेयमार्ग दैवीसम्पदाका मार्ग है और प्रेयमार्ग आसुरी-सम्पदाका मार्ग है। श्रेयमार्गका अनुसरण करना ही शास्त्रकी आज्ञा है। प्रेयमार्गको अपना लक्ष्य बनानेके कारण ही आज व्यक्तिकी, परिवारकी, समाजकी, राष्ट्रकी, देशकी, समूचे विश्वकी, समस्त चराचर जीव-जगत्की, पर्यावरणकी एवं प्राकृतिक सम्पदाकी जो दुर्दशा हो रही है और उसका जो दुष्परिणाम हो रहा है, वह सभीके समक्ष है, किसीसे भी छिपा नहीं है। आज चारों ओर युद्धकी अनर्थकारी विभीषिकाएँ मुँह बाये खड़ी हैं; सर्वत्र भय, आतंक एवं असुरक्षाके बादल मँडरा रहे हैं, व्यक्ति व्यक्तिको और राष्ट्र राष्ट्रको हड़पना चाहता है, अपने अहंकारकी संतुष्टिके लिये राष्ट्रशासक कुछ भी अनर्थ करनेके लिये सहर्ष कटिबद्ध हैं, धर्म एवं अधर्मका तनिक भी विवेक रह नहीं गया है, और अन्यायोपार्जित द्रव्यके द्वारा भोगासक्ति ही मानवका उद्देश्य बन गया है।

इस सबका मात्र एक हेतु यही सुनिश्चित रूपसे दिखायी देता है कि मनुष्यने अच्छाई छोड़ दी है और बुराईको कसकर पकड़ रखा है। उसने दैवीसम्पदाको तिलांजलि दे दी है और आसुरी-सम्पदाको सहर्ष अपना रखा है। उसने सद्‌गुणोंका परित्याग कर दिया है और असद्‌गुणोंको स्वीकार कर रखा है। ऐसे तमसाच्छन्न बुद्धिवाले आसुरी मानव अधर्मको ही धर्म मानकर इन्द्रियोंकी भोगासक्तिमें रचे-पचे हैं।

सामान्य रूपसे दैवीसम्पदाका तात्पर्य है—सभी सात्त्विक गुणोंसे सम्पन्न रहना और फिर त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे भी अतीत होकर गुणातीत-अवस्थाको प्राप्तकर ज्ञानकी भूमिकाओंमें रमण करना, ठीक इसके विपरीत आसुरी-सम्पदाका तात्पर्य है—दुर्गुणोंको अपनाये रखना, फलस्वरूप अधोगतिको प्राप्तकर दु:खसागरमें निमग्न रहना। क्या यही मानव-शरीर प्राप्त करनेका प्रयोजन है? क्या अपने अहंकारकी संतुष्टिके लिये ही यह देह प्राप्त हुई है? क्या दूसरोंको पीड़ा पहुँचाना और इन्द्रियोंकी मनमानीको सुख और परम आनन्द समझना ही बुद्धिमत्ता है! तो फिर, हम कैसे असद्‌गुणोंका परित्यागकर दैवी सम्पदाकी सोपान-परम्पराको प्राप्त कर सकते हैं? कैसे हम आसुरीभावका सर्वथा परित्यागकर एक आदर्श मानव और फिर दैवीसम्पदाको आत्मसात्‌कर भगवत्प्राप्तिके मार्गमें आगे बढ़ सकते हैं! इन्हीं सब प्रश्नोंके उत्तरके रूपमें गीताप्रेससे एक विशेषाङ्क प्रकाशित करनेकी भावनात्मक योजना तो बहुत समयसे थी और कल्याणके प्रेमी पाठक महानुभावोंका भी बराबर यह सुझाव आता रहा कि भगवान्‌ने गीतामें दैवीसम्पदा और आसुरी-सम्पदाको दो भागोंमें बाँटकर जो दिग्दर्शन कराया है, उसकी कितनी महिमा है, कैसा माहात्म्य है, वर्तमान संदर्भमें उसकी क्या और कितनी आवश्यकता है, दैवी गुणसम्पत्तिको आत्मसात् करने और न करनेका क्या परिणाम होगा, आसुरी सम्पत्तिको सुख माननेका क्या दुष्परिणाम होगा और फिर कैसी दुर्गति होगी—इसका शास्त्रीय स्वरूप तथा ठीक-ठीक व्यावहारिक स्वरूप प्रदर्शित करनेके लिये कल्याणका एक विशेषाङ्क प्रकाशित किया जाय। इन्हीं सब बातोंको ध्यानमें रखकर आगामी वर्ष २०२३ ई० में **'दैवीसम्पदा-अङ्क'** नामसे विशेषाङ्क प्रकाशित करनेका विचार सुनिश्चित हुआ है।

इस गुरुतर कार्यकी उत्तम परिणतिके लिये हम अपने प्रेमी पाठकों एवं लेखक महानुभावों, आचार्यों, संतों एवं विद्वज्जनोंसे सादर सहयोगकी प्रार्थना करते हैं। हम आशा करते हैं कि आसुरी एवं दैवी सम्पत्तिके दोष एवं गुणोंका निर्वचन करते हुए विविध आख्यानों, पौराणिक कथानकों, गुणावलीसे सम्पृक्त आदर्श चरित्रों और रोचक कथाओंके माध्यमसे उसे पुष्ट करते हुए अपना महत्त्वपूर्ण अभिलेख ३१ जुलाई, २०२२ तक उपलब्ध करानेकी कृपा करें। रोचक एवं कथात्मक सामग्रीको प्रकाशनमें प्राथमिकता दी जायगी। यहाँ विषय-निर्देशके रूपमें विशेषाङ्ककी एक सामान्य विषय-सूची भी साथमें प्रस्तुत है।

विनीत—

प्रेमप्रकाश लक्कड़

(सम्पादक)

विषय-सूची

(क) दैवीसम्पदाकी स्वरूप-मीमांसा

१- दैवीसम्पदाका तात्पर्यविषयीभूत अर्थ।

२- दैवीसम्पदा—अन्त:करणमें समस्त सद्‌गुणोंकी प्रतिष्ठा।

३- आसुरी-सम्पदा—अन्त:करणमें समस्त असद्‌गुणोंकी धारणा।

४- दैवीसम्पदासे सम्पन्न महापुरुषके लक्षण।

५- दैवीसम्पदा और अध्यात्मज्ञान।

६- दैवीसम्पदा मुक्तिके लिये—**'दैवी सम्पद् विमोक्षाय।'**

७- आसुरीसम्पदा बन्धनके लिये—**'निबन्धायासुरी मता।'**

८- दैवीसम्पदाका अवलम्बन—सभी भयोंसे मुक्तिप्राप्ति—**'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।'**

९- दैवीसम्पदासम्पन्न पुरुषको प्राप्त सद्गतिका निरूपण।

१०- योगवासिष्ठमें वर्णित ज्ञानकी सप्त भूमिकाएँ।
११- पृथक्-पृथक् भूमिकाओंमें पहुँचे पुरुषकी दैवीसम्पदाका स्वरूप।
१२- सातों भूमिकाओंमें पुरुषके लक्षण।
१३- योगसिद्धियाँ एवं दैवीसम्पदा।
१४- दैवीसम्पदा और सदाचार-मीमांसा।
१५- **'न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।'**
१६- आदर्श मानवता—दैवीसम्पदासे समन्वित रहना।
१७- मानवताका अधिष्ठान—दैवीसम्पदा।
१८- योगारूढ़ और आरुरुक्षु पुरुष एवं दैवीसम्पदा।
१९- दैवीसम्पदाकी प्रतिष्ठा—गुणातीत होनेका भाव।
२०- श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णित दैवीसम्पदासम्पन्न स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षण।
२१- दैवीसम्पदा और निष्कामकर्मयोग।
२२- दैवीसम्पदा और भगवद्भक्ति।
२३- दैवीसम्पदाकी भगवत्स्वरूपके साक्षात् ज्ञानमें हेतुमत्ता।
२४- दैवीसम्पदा सम्पन्न संतों एवं महापुरुषोंके आदर्श चरित।
२५- चतुर्दश महाभागवतोंकी सात्त्विक निष्ठाका स्वरूप।
२६- भगवद्भक्तोंकी दैवीसम्पदा।
२७- योगसिद्धियाँ और दैवी सम्पत्ति।
२८- वेदादि शास्त्रोंमें प्रतिपादित दैवी सम्पदाका अभिज्ञान।
२९- पुराणोंमें वर्णित दैवीसम्पदासम्पन्न सत्पुरुषोंके आख्यान।
३०- श्रीमद्भागवतमें वर्णित दैवी सम्पत्तियाँ।
३१- पुराणोंका सात्त्विक सदाचार-निरूपण।
३२- भगवान् साम्बसदाशिवके दैवीसम्पदापरक बोध-वचन।
३३- दैवीसम्पदाके आदर्श द्रष्टान्त—मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम।
३४- महर्षि वसिष्ठकी दैवी आचार-संहिता।
३५- भगवान् वेदव्यासके दैवीसम्पदा-विषयक उपदेश।
३६- दैवीसम्पदाका आचारपरक विधान—मानव धर्मशास्त्र।
३७- महर्षि वाल्मीकिका दैवीसम्पदाका निदेशक ग्रन्थ—वाल्मीकीय रामायण।
३८- दैवी मर्यादाका प्रतिष्ठापक सद्ग्रन्थ—श्रीरामचरितमानस।
३९- दैवीसम्पदासे सम्बद्ध महर्षि आपस्तम्बकी बोध-वचनावली।
४०- दैवीसम्पदाका कथाकोष—महाभारत।
४१- संतोंकी वाणीमें दैवीसम्पदाका उद्बोधन।
४२- वेद एवं उपनिषदोंमें वर्णित दैवीसम्पदासम्पन्न पुरुषोंके उदात्त चरित।
४३- सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका स्वरूप-विमर्श।
४४- सात्त्विक, राजस एवं तामस पुरुषोंका लक्षण।
४५- तीनों गुणोंसे अतीत गुणातीत पुरुषका लक्षण।
४६- सात्त्विक आनन्द और आसुरी दु:खका वर्णन।
४७- **यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।**
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
४८- दैवीसम्पदा और विश्वबन्धुत्व।
४९- दैवीसम्पदा एवं सात्त्विक निष्ठाका स्वरूप—

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
(गीता १८।५१—५३)

५०- दैवीसम्पदाकी फलावाप्ति—

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥
(१५।५)

(ख) दैवीसम्पदाके विविध आयाम

१- **'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्'**—सत्य एवं प्रिय भाषण।
२- **'अहिंसा परमो धर्मः'**—मन-वाणी एवं शरीरसे किसीको भी किसी प्रकार कष्ट न देना।
३- अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोधका न होना।
४- कर्मोंमें कर्तापनके अभिमानका त्याग।
५- अस्तेयधर्मका पूर्णतः परिपालन।
६- भयका सर्वथा अभाव—**'रक्षिष्यतीति विश्वासः।'**
७- चित्तकी चंचलताका अभाव।
८- सभी भूत प्राणियोंके प्रति द्वेषभावका राहित्य।
९- शास्त्रविरुद्ध कर्मोंको मन-वाणी एवं शरीरसे किसी भी प्रकार न करना।

१०- सभी प्राणियोंमें हेतुरहित दयाका भाव रखना और सभी प्राणियोंके हितमें निरत रहना—'**सर्वभूतहिते रताः**'
११- सभीमें निःस्वार्थभावसे मैत्री एवं करुणाका भाव स्थापित करना—'**मैत्रः करुण एव च।**'
१२- ब्रह्मचर्यका पालन।
१३- श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव।
१४- दम्भाचरण एवं पाखण्डसे दूर रहना।
१५- मन-इन्द्रियोंसहित शरीरका निग्रह।
१६- सम्पूर्ण भोगोंमें आसक्तिका अभाव।
१७- एकान्त एवं पवित्र देशमें रहनेका स्वभाव।
१८- आत्म एवं अनात्म वस्तुका विवेक रखना।
१९- यदृच्छालाभमें सन्तुष्ट रहना।
२०- न किसीको उद्वेलित करना और न किसीसे उद्विग्न होना।
२१- सुख-दुःख, शीत-उष्ण, शत्रु-मित्र, निन्दा-स्तुति एवं मान-अपमान आदि द्वन्द्वोंमें समबुद्धि रखना।
२२- तितिक्षाकी साधनाका अभ्यास।
२३- यज्ञ, दान, तप एवं सेवा आदि विहित कर्मोंको कर्तव्यबुद्धि एवं निष्काम भावसे सम्पन्न करना।
२४- सम्पूर्ण कर्मोंमें फलेच्छाका त्याग।
२५- अपरिग्रहधर्मका परिपालन करना।
२६- बाह्यकरणों तथा अन्तःकरणोंकी शुचिता।
२७- विनय, आर्जव, क्षमा, धृति तथा तेज आदि सात्त्विक भावोंसे सम्पृक्त रहना।
२८- सत्संग एवं स्वाध्यायका स्वभाव बनाना।
२९- वैराग्यभावका आधान।
३०- शास्त्रविरुद्ध एवं लोकविरुद्ध कर्मोंके क्रियान्वयनमें लज्जा एवं भयका भाव रखना।
३१- भगवान्‌के नाम और गुणकीर्तनमें तीव्र अभिरुचि।
३२- ईश्वरमें अव्यभिचारिणी अनन्य भक्ति रखना।
३३- सात्त्विक दानपरायण होना।
३४- भगवान्, देवता, माता-पिता एवं गुरुजनोंकी सेवा-पूजा करना।
३५- अहंता एवं ममताकी आसक्तिसे दूर रहना।
३६- देवाधिष्ठान गोमाताकी सेवा-शुश्रूषा।

(ग) आसुरी-सम्पदाकी विविध अभिव्यक्ति

१- अन्तःकरणमें समस्त तामसी अवगुणोंकी अवधारणा।
२- धर्माचरण, सदाचार एवं मानवतासे सर्वथा विहीन रहना।
३- तामसी गुणोंकी अधीनता।
४- काम, क्रोध, दम्भ, मद एवं मान आदि आसुरी भावोंसे परिपूर्ण रहना।
५- अन्तः एवं बाह्यशुद्धिका अभाव।
६- असत्यभाषणमें अभिरुचि।
७- मिथ्या आचार एवं मिथ्या ज्ञानसे संवलित।
८- दूसरोंका अपकार करनेका स्वभाव एवं कृतघ्नता।
९- कामनाओंमें प्रबल आसक्ति।
१०- आशापाश एवं चिन्ताओंसे सतत घिरे रहना।
११- विषयासक्तिजन्य क्षणिक सुखको ही परम सुख मानना।
१२- अन्यायपूर्वक धनादिके संग्रह-परिग्रहमें परायण रहना।
१३- मैं ही धनी हूँ, मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही ऐश्वर्यका भोग करनेवाला हूँ और मेरे समान कोई दूसरा नहीं है—इस प्रकारकी धारणा रखना।
१४- शास्त्रविधि एवं मर्यादाका परित्यागकर मनमाना आचरण करना।
१५- भगवद्भक्ति एवं धर्माचरणको मिथ्या एवं पाखण्ड समझना।
१६- वेदादि शास्त्रों तथा भगवन्नामस्मरण आदिमें श्रद्धा न रखना।
१७- सात्त्विक गुणोंकी उपेक्षाकर आसुरी प्रवृत्तिमें आनन्दित रहना।
१८- फलेच्छासे प्रभावित हो कर्मोंमें प्रवृत्त होना।
१९- असत्कर्मके सम्पादनमें लज्जा एवं भय नहीं, अपितु गौरव मानना।
२०- आसुरी-सम्पदासे युक्त जनोंका आहार-विहार, व्यवहार और विचार।
२१- आसुरी-सम्पदाका परिपाक—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। १९-२०)

नवीन विशिष्ट प्रकाशन—छपकर तैयार

चित्रमय श्रीरामचरितमानस (कोड 2295) [ग्रंथाकार, सटीक चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर] जिज्ञासु पाठकोंकी विशेष माँगपर 300 से अधिक आकर्षक रंगीन चित्रोंके साथ पहली बार प्रकाशित हुआ है। मूल्य ₹ 1600

केवटद्वारा श्रीरामको गंगा पार करना

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

अत्यन्त आनन्द और प्रेममें उमँगकर वह भगवान्‌के चरणकमल धोने लगा। सब देवता फूल बरसाकर सिहाने लगे कि इसके समान पुण्यकी राशि कोई नहीं है॥ ४॥

दो०—पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥ १०१॥

चरणोंको धोकर और सारे परिवारसहित स्वयं उस जल (चरणोदक) को पीकर पहले [उस महान् पुण्यके द्वारा] अपने पितरोंको भवसागरसे पारकर फिर आनन्दपूर्वक प्रभु श्रीरामचन्द्रको गङ्गाजीके पार ले गया॥ १०१॥

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥

निषादराज और लक्ष्मणजीसहित श्रीसीताजी और श्रीरामचन्द्रजी [नावसे] उतरकर गङ्गाजीकी रेत (बालू)में खड़े हो गये। तब केवटने उतरकर दण्डवत् की। [उसको दण्डवत् करते देखकर] प्रभुको संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं॥ १॥

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥

प्र० ति० 20-04-2022
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2020-2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)